

प्राचार्य श्री तुलसी भवसु समारोह के अभिनन्दन में

अणुव्रत की ओर

द्वितीय भाग

सूत्रिक
श्री नगराजजी

सम्पादक
श्री महेश्वरकुमारजी 'प्रथम'

प्रथम सम्पादक
श्री सोहनलाल बाफणा
उपसंभाली अणुव्रत समिति दिल्ली

१९६१

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरो गेट, दिल्ली ६

ANUVRAT KI OR

by

Moni Shri Mahendrakumarji Pratham

Rs. 2.00

(श्री जैन श्वेताम्बर तैरापंथी महात्मना कलकत्ता-१ के सौम्य से प्राप्त)

प्रकाशक

रामलाल पुरी बंधालक
आत्माराम एण्ड मस
काल्मीचे बेट, दिल्ली
शालाये

हीन लाल, नई दिल्ली
बोड़ा दासा जयपुर
माई हीरा बेट, आसम्बर
बेममपुल रोड मेरठ
बिस्वविद्यालय क्षेत्र, बगड़ीगढ़

मुद्रण श्री दाग

प्रथम संस्करण : १९६१

मुद्रक

श्रीधर एसीकिट्टक प्रेस,
कमलानगर दिल्ली ६

भूमिका

आज से लगभग छह हजार वर्ष पूर्व मगधान् श्री महावीर ने भारतवर्ष के पूर्वी अंचल से पांच अणुव्रतों का संन्देश दिया था। गौतम बुद्ध ने लगभग उसी युग में और उसी अंचल से पंचशील का संन्देश दिया था। वे संन्देश पूर्व से चलकर भारतवर्ष की पश्चिमी सीमाओं से ही नहीं टकराए, अपितु कासान्तर से वे समुद्रों-गार भी पहुंच गए। अणुव्रत-आन्दोलन का धीरे भारतवर्ष के पश्चिमी अंचल राजस्थान में महर्षि भूर्भस्य आचार्य श्री तुलसी के मुख से उठा और देश की सुविस्तृत सीमाओं तक पहुंचा। पूर्व के लोगों ने माना महावीर और बुद्ध का बही संन्देश पश्चिम से प्रतिध्वनित होकर पुनः हमारे कानों में पड़ा है तो उत्तर और दक्षिण के लोगों ने माना भारतवर्ष ऐसे दूरियों को सदा से ही पैदा करता रहा है, या विनती हुई समाज की भूरी को भारतवर्ष करके रखते हैं।

आन्दोलन के साथ सदा अपना लक्ष्य चुड़ा। उसकी चर्चा सभों-सम्मेलनों में भी चली। उसे जनता का सहयोग मिला और जननेताओं का भी। देश के प्रांतीय इस ओर सक्रिय हुए तो देश के विचारक और साहित्यकार भी। आन्दोलन की अन्तिम परीक्षा बुद्धिजीवी लोगों में हुई और वह बहू-बहू-बहू उभर उभर। 'अणुव्रत की ओर' आन्दोलन का बाह्य प्रतिबिम्ब नहीं बहू उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब है। बहू ऐसे सैद्धांतिकों की सैद्धांतिकी से धारिर्भूत हुआ है जिसकी पनी दृष्टि स्थूल को भेदकर अन्तर को पहचान करने में समर्थ है।

अणुव्रत-आन्दोलन एक विचार-अन्ति है। बहू अत्यन्त निरालस का प्राक्किम्ब विचारों में देखता है। विगत बारह वर्षों में अणुव्रत-आन्दोलन ने देश में क्या किया वह किसी मौखिक कलेक्टर के रूप में नहीं देखा जा सकता और न बहू ठोल-बाप व संख्या का विषय ही बन सकता है। बहू अमूर्त निर्माण है

जो कोटि काटि लोभों के मग से प्रसूत हुआ है । वह विचार निर्माण कार्यरूप में परिणत होया भी दृष्टिगोचर हो रहा है । नैतिकता धर्म प्रघासन में घा रहा है । शिक्षण केन्द्रों में घा रहा है । योजना धारोप में घा रहा है तथा वह वहीं धीर बाजारों धीर रचनात्मक संस्थाओं में घा रहा है । नैतिकता धर्म का धारोप लाने में अगुवत-धान्दोलन रूप में अगता निरूपम स्थान रखता है । ऐसे अनियाम की रीत में अनिचार्य धरोधा थी जो केवल नैतिक धम्बुदक को ही अघना ध्येय बनाकर धारोप बने । अगुवत धान्दोलन ने इन धरोधा को पर्याप्त रूप से पूरत किया है ।

मुनि महेश्वरकुमारजी 'प्रथम' में प्रकीर्ण विचार-मुक्तियों को एक सूत्र में विरोधर एक बहुमुख्य द्वार बना दिया है । विचार एक स्वाधी सम्पत्ति होते हैं । उन्हें संजोकर किसी सुरक्षित ढरूप में रक्ष दिया जाता है तो वे युग-युग के लिए प्रेरणा-सीप हो जाने हैं । मुनि महेश्वरकुमारजी ने अगुवत-धान्दोलन के प्रचार प्रसार में बहुत नाने नैतिक कार्य किये हैं । साहित्य के क्षेत्र में भी धान्दोलन को साम्यता दिखाने में उनकी सूझ बुझ धीर उनका धम अयुक्त है । एक युग या जब साहित्यकारों को धान्दोलन में साम्प्रदायिक गण्य धाती थी तब धीर प्रभाव नहीं लगता था । मुनि महेश्वरकुमारजी ने अन्ति की रूप कुर्वेय धीवार को हटाने के लिए साहित्यकारों पत्रकारों तथा धर्म्य विचारकों से व्यक्तिय-सम्पर्क साधा । धरोधरा मुक्तिपूत अर्थात् कीं । उनकी धारोपधारों का बुद्धिगम्य समाधान दिया धीर उन्हें धान्दोलन के प्रति प्रभावित किया । दिल्ली जयपुर, बम्बई, अगनरु धीर अमरुता उनके कार्यक्षेत्र रहे । अघने कार्य में अहोनि पूर छाया धीर दूरी की अघा भी अरबाह नहीं की । दरबाजे में दरबाजे पर धूमकर अम-अगर्क का जो अहोनि धारोप अघनाया वह अर्धधा नवीन धीर उनके धारोप-साधन का परिचायक था । धादर धीर विरुधकार को अम रूप से अरुध अरुने बाका व्यक्तिय हमें अरुध ही गगता है । उनकी धोम्यता, धरोध तथा धारोप-निष्ठा की धरोधर अनेक लोभ मुक्त होते थ । एक बार वह अमठे-किले मुप्रतिष्ठ विचारक धीर साहित्यकार थी धीरेश्वरकुमारजी के धर पढ़े । धीरेश्वरकुमारजी ने पूरत—'धारा धार विरुधे साहित्यकारों ने अम तक अगर्क अर बुके हैं ।' मुनि

महन्त्रकुमारजी ने स्मित भाव में उत्तर दिया— प्रायज्ञा नम्बर सातवां है ।
 जीनेन्द्रकुमारजी ने कहा— प्रायज्ञी कार्यक्षमता के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या होती
 है । कान भी भी ऐसा कर्मस्थ होता । तेस ही एक प्रसंग पर काका कासेसकर
 ने कहा—प्राय मेरे घर पर आए इसमे जैन साधुओं के प्रति मेरी व्यथा बड़ी ।
 मेरा धब तक का अनुभव यही था कि जैन साधु सबको अपने यत्रा ही बुझाकर
 चुन होत हैं । परन्तु, उनके व्यक्तिगत सम्पर्क क कट्ट घोर मधुर संस्मरणों का एक
 लम्बा शरीर है और किसी बिल बह अखुषत इतिहास का एक प्रेरणाप्रद प्रभाव
 बनेगा । तदनन्तर मुनि मोहनलालजी 'सार्ब' धारि और भी अनेक मुनियों
 ने इस क्षेत्र में कार्य किया और कर रहे हैं । इस कार्य-क्षेत्री का परिणाम हुआ
 कि अखुषत-आम्बोसन बहुत धीम्र ही देम क बुद्धिजीवी लोगों की लेखिनी और
 बागी का विषय बना ।

पिछले वर्षों मुनि महन्त्रकुमारजी 'प्रथम' हस्तलिखित 'जय-ज्योति' पत्रिका
 का कन्साल्टन्ट डग से सम्पादन करत रह हैं । उन्होंने वा अखुषत विद्येपाठ भी
 निकाले । 'अखुषत की धार म अधिकांश सेख से ही है जो उक्त विद्येपाठों
 से मिल गए है तथा कुछ अन्य भी । कुल मिलाकर ३७ निबन्धों का यह सफल
 अखुषत मासिक म धीरार्थक और जन-मानस से मिल एक नैतिक पाठ्य होगा
 ऐसी धामा है ।

- जन १९९१ }
 दिवसी }

—मुनि मगराम

सम्पादकीय

साहित्य मनुष्य की निरक्षर सम्पत्ति है। साहित्य ही भूत का वर्तमान स और वर्तमान की मरिच्य सं ओड़ता है। सहलो बप पूब मनुष्य न जा सोचा प्राज के मनुष्य को बिरासत के रूप में निमता है और प्राज मनुष्य ओ सोचता है वह माहित्य क माध्यम न प्राज वाली पीड़ी की बिरासत बनता है। एक युग बड़ भी था जब मनुष्य सिद्धन का प्रावी नहीं था। तब मुक्तम्ब परम्परा से ही प्राजा ज्ञान प्रायमी पीड़ी को देता था। साहित्य की यह प्राज प्राजा रूपों में हर एक युग में बहठी ही रही है और मनुष्य इसमें उपकृठ होता ही रखा है।

धरुबत-प्राग्दोलन एक नैतिक प्रावाह है। रक्त का संचार जैसे हर एक बमनि में प्रावश्यक हाता है नैतिकता का संचार भी जीवन के हर ब्यबसाय और युग के हर बरण में प्रावेक्षित है। साहित्य ही उस नैतिक बिच्छत् का प्राकर तत्व है। धरुबन की प्राग्' से प्रागों को नैतिक प्राेरणाएं ही नहीं मिर्गेगी वह एक युग की स्थिति का प्राीरा भी युग-बग में देता रखा। बिन्दन प्राग् मनन की दृष्टि में भी उससे प्राठकों को बहून प्राप्राी उपसम्ब होमी।

धरुबत साहित्य प्राब तक प्रा्याप्त समृद्ध हो चुका है। प्रानेकों बिबेचनात्मक पुस्तकों प्राकाश में प्रा चुकी हैं पर वह सकलन प्रापने प्राकार का है। एक ही कृति में देस के प्रानेकालक बिचारकों क बिचार इसकी प्रापनी बिबषता है। धरुबता पर प्राब तक सेस रूप में जितना सिखा प्राया है, वह समब इस संकलन में नहीं प्रा सका है। बिडान् मुनिबनों ने सेस रूप में जितना सिखा है उसका स्वतन्त्र संकलन कई बरनों में प्राज प्राय्य है। इनर बिडानों ने जा प्राब तक सिखा है उसमें से भी प्रास्तुत संकलन में चुन हुए सेस ही लिए जा मने हैं। कुछ एक बकनाओं के प्रापणों को भी संयूहीत कर सेसों का रूप दे बिया प्राया है ताकि सर्वप्राचारण क लिए उनके धरुबत सम्बन्धी बिचार प्राया सुप्राब रह सकें।

सगुहल की घोर के नेल केवल कलाका-कुडि से ही नहीं लिसे गए हैं उनमें लमरवर्गी चिन्तन भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है आचार्य श्री तुमरी का यह धार्य उल्लेख सब एक ममाक-वर्धन का रूप से रहा है। हर एक समय की उद्गम यावा भी ता यही है कि पहले यह धार्य उपरेषों के रूप में मोकयाही बना धीर तरावकात् लकंभीवी मनीषियों के चिन्तन का विषय होकर रगन बना।

प्रस्तुत पुस्तक सगुहल-साखोलन के इतिहास उसकी धार्यनिक वृष्टमृति लकीन ममाक रचना में उपयोयिता धारि विविध परधुषों पर प्रकाश डालनी है। मय धनुमान धा कि उपलब्ध लानकी एक ही आचार में मता जावैगी पर उसकी बहुमता ने ऐसा हात नहीं किया। इस संग्रह को दो भागों में विभक्त करला गया है।

कुछ निबन्ध प्राचीन हैं धन उनमें आम्पोयन के स्थान पर मंब राज्य का व्यवहार हुआ है। मम्पोयन में उनके इतिहास को सुरक्षित रखन की दृष्टि म धार्य परिवर्तन नहीं किया गया। वे निबन्ध तिन समय विभ मय इसकी छान कीन करन पर भी निधि का पता न चप मडा धन उम उन्वेम में श्री पुस्तक को बचाता गया।

आचार्य श्री तुमरी का मुह व रूप व पाकर तो मैं कुतहरय हूं जो विलु डेर लिख यह भी गौरवालय है कि मुने मुनि श्री ललगवकी का मलन धार्य वर्जन लिपता छा है। मुनि भी आम्पोयन के विचार धीर कनु ल लोनों पशों क विनाम में प्रह्विया यन्मयीन रहे हैं। आम्पोयन की प्रत्येक दिशा में उनका मूष्यकात योव रहा है। प्रस्तुत उपलब्ध भी उनके धार्य-वर्जन का ही सुरिलाल है।

७७ पुन १९९१
 वृत्तिकाय मंत्र प्रवृत्ति लवन
 मया बाबा लिव्णी

}

—मुनि महारकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

अशुद्ध असांख्यिक आन्दोलन	—श्री अयप्रकाशनाथय्य	१
मानवता की महान् सेवा	—उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	६
आधुनिक युग का आन्दोलन	—श्री बम्बू माई बेमाई	
	तात्कालीन अममन्त्री भारत सरकार	७
अशुद्धों का अर्थ नतिक व्यवहार	—डा० हरेकृष्ण मेहता	
	तात्कालीन राज्यपाल बम्बई	८
आन्दोलन की सफलता	—श्रीमती रामेश्वरी महार	११
राष्ट्र व संस्कृति का नव निर्माण	—श्री पुस्तोत्तमबास नारयण	१३
नर को नारायण बनाने का अर्थ निक्षेप	—कविवर श्री बालकृष्ण	
	अर्मा 'नवीन'	१५
एक कर्म्यानुकारी योजना	—श्री जगजीवनराम	
	रेल मन्त्री भारत सरकार	१६
अशुद्ध महामुनि में एक अल-ओत	—श्री हरिनाथ उपाध्याय	
	वित्तमन्त्री राजस्थान	२२
यह हलाहल कौन पीया ?	—श्री विष्णु प्रभाकर	२६
अशुद्ध : अर्थ और क्रम का समन्वय	—श्री गोपीनाथ 'अमन'	
	अध्यक्ष, जन सम्पर्क समिति दिल्ली	३२
राष्ट्र-उन्नयन में अशुद्ध का योग	—श्री कृष्णचन्द्र विद्यालकार	
	सम्पादक 'सम्पदा'	३५
नव निर्माण और नीतिकला	—श्री रामनाथ अर्मा	
	जन सम्पर्क अधिकारी दिल्ली प्रशासन	३६

धुवान् और अक्षुन्नत	—श्री यद्यपान वैद	
	सम्पादक, 'जीवन-साहित्य'	४४
धाम-सुद्धि का धाम्बोलन	—भा० धामनाथ	
/	महापीर, दिल्ली नगर-निबन्ध	४६
नैतिक मूर्खों की आश्चर्यकता	—श्री सरसदिवोनी	
	वन सम्पर्क अधिकारी अजमेर	५१
तवाचार और नैतिकता का धाम्बोलन	—श्री घोभासान पुण्ड	
	सहस्रम्पादक 'हिन्दुस्तान'	५६
बरिज-गठन की एक तस्वीर	—श्रीमती सुषेठा कृपमानी	
	धर्ममन्त्री, उत्तर-प्रदेश	५८
रत्ना संस्कृति व सम्मता का संयम अक्षुन्नत	—श्री रामनाथ पुण्ड	
	उपसम्पादक हिन्दुस्तान	६२
मनु से महान् की और	—स्वामी प्रेमपुटी जी	६५
इतिहास पुनर्जागरण	—डा० हरेकृष्ण मेहता	
	तात्कालीन राज्यपाल बम्बई	६८
वैदिक धर्मियों का एकीकरण	—प्रो० बलेशचन्द्र घोष	
	मन्त्र विरचिष्ठासय	७१
अक्षुन्नत या अक्षुन्नत	—प्रो० प्रमथन्ध विजयवर्माय एम ए०	७६
एक समाज निर्माता से अक्षुन्नत का स्वाम	—श्री बीनरवास सिद्धान्तार्कार	७९
पतङ्गा ऊँचा रचना है	—श्री यद्यपान वैद	
	सम्पादक 'जीवन-साहित्य'	८४
धाम्बार्थ सुमती का अक्षुन्नत धाम्बोलन	—श्री कुप्येन्नु	
	महाम्पादक 'नवजीवन' लखनऊ	८७
नैतिक प्रवृत्तियों में अक्षुन्नत	—श्री रियमशाह टांका	
	मम्पादक 'जैन पत्र' ६१	९१

अनुवृत्त का सच्चा भावबोध	—श्री गोपीनाथ 'भ्रमर'	
	अध्यक्ष जन सम्पर्क समिति दिल्ली	१६
अनुवृत्त : भाव की परम प्राबल्यकता	—श्री कृष्णचन्द्र विद्यामंकार	
	सम्पादन 'सम्पदा'	२६
विस्क-शक्ति का महापत्र अनुवृत्त	—श्री रामेश्वर 'अचान्त'	१०४
अनुवृत्ती संघ की भक्तक	—श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन	१०७
अनुवृत्त और प्रेम-राज्य	—श्री रामबहादुरनाम श्रीवास्तव	
	'साहित्याचार्य'	११०
आत्म-निरीक्षण का अक्षर	—श्री रामकृष्ण 'भारती'	११६
अनुवृत्त और समाज	—श्री रमेशकुमार 'धील'	१२१
अनुवृत्तों का बुधर्म	—श्री धीरमन्द्र साहित्यरत्न	१२४
अनुवृत्त धाम्बोलन	—श्री बन्धु प्रसाद सिंह बी ए	१२१
साहित्यक समाज-रचना का स्वप्न	—श्री यशपाल जैन	
	सम्पादन 'जीवन साहित्य'	१३३

अध्यात्म असांख्यिक आन्दोलन

—श्री अय्यप्रकाशनाथरायण

सोचों के लिए यह आश्चर्य का विषय होना कि मेरे जैसा व्यक्ति किस प्रकार धूल मटक कर राजनीति से सर्वोपर्य व अध्यात्म जैसे आध्यात्मिक क्षेत्र में आ गया। मेरे जीवन के तीन पहलू हैं—एक जब मैं हिंसा और साम्यवादी विचारों में विश्वास करता था दूसरा भोक्तृव्यात्मक समाजवादी का और अन्त में जब देखा कि मेरे समाज-कल्याण के सक्षय एक पहुँचाने के लिए ये ठीके उचित नहीं हैं तो सर्वोपर्य और अध्यात्म जैसे आध्यात्म-पथ को ही उचित मार्ग मानकर इस ओर तन गया हूँ। इस तरह मैंने अपने तरीके बने हैं, लेकिन मेरा लक्ष्य नहीं है।

आचार्य श्री तुमही के नेतृत्व में जो मंगसकारी कार्य हो रहा है उसके साथ मैं सम्मन्य हूँ और मेरी जो कुछ भी सक्रिय है, उस इस पृथ्वी कार्य में लगाने को तत्पर हूँ। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में अज्ञानता का अन्धकार छाया है। मनुष्य का नैतिक पतन तीव्र गति से बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में जबकि चारों ओर नैतिक व आध्यात्मिक संकट छाया हुआ है चाहे कितनी भी सम्बन्ध-सम्बन्धी योजनाएँ आज क्यों न बनाई जाएं बड़े-बड़े अन्त-कारखाने क्यों न खोले जाएँ, सहकारी खेती आदि क्यों न कराई जाएँ; सब निष्फल होने वाले हैं। यदि मानवता का विकास नहीं हुआ तो ऐसी परिस्थिति में सर्वनाश ही होने वाला है। इस व्यापक युग में यदि व्यक्ति के जीवन में वैयक्तिक व सामाजिक धर्म का प्रतिष्ठा नहीं होता है तो विज्ञान के द्वारा संसार का सर्वनाश होने वाला है और इस तरह मानव का अस्तित्व ही इस पृथ्वी से उड़ जाएगा।

आज लोगों के सामने अन्धनीति पहुँचाने से भी पहले मानव बनने की

आवरणकटा है। इसके लिए अपेक्षा इस बात की है कि उनके वैदिक जीवन-
व्यवहार में सामाजिकता के आधार पर धर्म कल्पना यैवी नैतिकता और
सांसारिकता की प्रतिष्ठा हो। यह कार्य धर्म का है जिसे धर्म-धुर धरा दिया
करते हैं परन्तु वैयक्तिक बायरे में ही सामाजिक बायरे में नहीं। आज के
सामाजिक जीवन का धर्म से सम्बन्ध हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। सामुहिक
धर्म में व्यक्तिगत साधना के युग में हमारे देश में एक महापुरुष (प्राचीन)
आया जिसने स्वतन्त्रता-संघाम को सामाजिक रूप दिया धर्म-प्रचार को
सामुहिक रूप दिया। इस प्रकार उसने सामूहिक सामाजिक साधना के द्वारा
समाज को धार बढ़ाया।

हमारे देश में उपस्थितियों की कमी नहीं रही है। आज भी अनेक सामु-सत्त
संपत्ता पहाड़ों या कन्दराओं में एकांतिक साधना करते मिलेंगे पर समाज के
लिए उनका कोई लाभ नहीं। वे बाहे धरने में कितने भी महामु कर्त्तों न हों
यदि उन्हें समाज से प्रयोजन नहीं तो वेच भी उनसे कोई प्रयोजन नहीं है।
ऐसे एकांतिक साधना में सत् उपस्थितियों के धर्म-धुरातु भक्त कमी-कमी तो
महो तक कह देते हैं कि धर्मक पर्वत पर उपस्था करने वाले धर्मक सत्त की
उपस्था के प्रभाव से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। हुआ होगा पर मुझे तो ऐसी
प्रतीति नहीं होती।

मैं तो भगवान् बुद्ध के उस धार्मिक को समाज-कल्याण के लिए धार्मिक
मानता हूँ जब उन्होंने हृदय निरूपण किया कि मैं धरने तक तक स्वर्ग के द्वार में
प्रवेश नहीं करूंगा जब तक कि वहाँ सभी मानवों का प्रवेश नहीं होता। यह
सामूहिक निर्वाण और साध की कल्पना थी। वेच भी यही लक्ष्य है कि सबके
उठे बिना एक के उठने से कल्याण नहीं है। समाज महावीर ने
विकृतियों को संपी बनाकर जीवनसाध के लिए यह धार्मिक बनाया। उनका
कहना था कि जब तक धार मानव समाज का विकास नहीं होता तब तक
किरी चीज में सफलता नहीं मिल सकती। भारतवासियों का उत्थान हो इसके
लिए उन्होंने धरना सब कुछ ग्योपहार कर दिया। स्वामी विवेकानन्द का
उदाहरण भी हमारे सामने है। उनके लिए कीर्ण-नी मुक्त-मुक्ति की कमी थी

लेकिन उन्होंने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया और लोगों को सामूहिकता का धोरण उद्घोषित किया।

गांधीजी ने इस विद्या में एक नई परम्परा काम की। उन्होंने सामूहिक आध्यात्मिक-आदि का सूत्रपाठ किया। इस आध्यात्मिक आदि का अर्थ यह है कि जब तक सारे मानव-समाज का उद्धार नहीं हो जाता तब तक वैयक्तिक मोक्ष प्राप्त नहीं होगा।

गांधीजी मेरे लिए धारण इसलिये हैं कि उन्होंने परमात्मा की ओर मानव-समाज में की और उसे ऊपर उठाया। आदि के अन्वयपूर्ण युग में अन्त दिनोबा और आचार्य तुमसी ये दो हीपक समाज को प्रकाश प्रदान कर रहे हैं। जीवन-विकास की दिशा में आचार्यप्रवर एक खोज कर रहे हैं दिनोबा भी खोज कर रहे हैं कि अर्थ को जीवन से कैसे जोड़ा जाए, किस प्रकार सामूहिक कार्यक्रम धारण रखा जाए? यह कोई आसान सवाल नहीं है।

प्रभुव्रत और सर्वोत्तम इन प्रश्नों में से दो उत्तर हैं। ये राजनीतिक या आर्थिक स्तरों पर नहीं, बल्कि नैतिक स्तरों पर मानवता को उठाने और विकसित करने में सगे हैं। इनके कुछ परिणाम भी निकले हैं। यद्यपि उनके परिणाम बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं, पर मैं ऐसे कार्यों की तुलना आइसबर्ग के छोटे-छोटे भागों से करता हूँ। जिस तरह वे टुकड़े ऊपर बिछाई देते हैं उससे भी नहीं अधिक समुद्र के जल में छुपे रहते हैं। उसी तरह इन अन्वय कार्यों के परिणाम ऊपर से बाह्य छोटे प्रतीत होते हैं पर इन्होंने नीचे गहरी तक अन्वय कासा हुआ है। इनके अन्वय परिणाम भी बीरे-बीरे सामने आते हैं, पर उनके प्रकाश में आने में समय लपता है। कुछ लोग प्रभुव्रती बने कुछ में भूतान सम्पत्ति-दान आदि किया पर इनका प्रभाव उन आइसबर्गों से सही रूप में नहीं आका या सकता क्योंकि उसका बीज अनेक लोगों में अन्वय करता है और एक लम्बी अवधि के बाद जब उसका अन्वय पल्लवित और पुष्पित होता है, तब वह दृष्टियत होता है।

आदर्श समाज की अन्वयता है कि उसमें प्रेम समता, सहकार व ग्याय की

प्रभावता होगी धीर वह शोचनीय-बिहीन होगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति न तो हिंसा से सम्भव है—बैसा कि रूस में आरखाही की पिटाकर भी सांठि नहीं है धीर न वह कानून से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिसका कि प्रयोग समाजवादी संस्थाओं के द्वारा इंग्लैण्ड में हुआ धीर भारत में हो रहा है। इन तरीकों से इस लक्ष्य की प्राप्ति इसलिए सम्भव नहीं हुई कि जनसे समाज धीर संस्थाएँ बढ़ती राष्ट्रीयकरण हुआ पर तब भी धार्मिक समाज का स्वप्न धार्मिक ही बना रहा। जब सारे संसार में यह धनुषज किया जाने लगा है कि मानव सुधार धीर मानवीय सुधार-विचार के लक्ष्य की प्राप्ति बाह्य परिस्थितियों व हिंसा या कानून से नहीं हो सकती। उनके लिए महारत्ना बापी विनोबा व धार्मिक भी तुलसी का पत्र ही सही उपाय है।

धाम धार्मिकता इस बात की है कि इस प्रकार की जितनी भी बाधाएँ हैं यदि एक हो जाएँ तो वेध में महान् कार्य हो सकता है। सत्य प्रेम अहिंसा धारि तत्त्व जो धनुषज के मूल हैं, उनकी प्रतिष्ठा सभी मठ या धर्म के साधु शक्तों ने की है। वे धार्मिक तत्त्व कैवल्य विनोबा या धार्मिक भी तुलसी के ही नहीं हैं। लोग चाहे जिस मठ को मानते हों पर वे समझें कि जीवन की यात्री कुछ धार्मिक नैतिक मूल्यों की पटरियों पर चलती है। इससे व्युत्पन्न हो जाने पर वह ऐसी जार्ड में जा मिलेगी कि बाह्य से धाम का वैज्ञानिक परमोत्कर्ष भी पास नहीं बिना सकता। विज्ञान के प्रागुभाव से ही धर्म के सम्बन्ध में घनेक भ्रातियों का विकास हुआ है। मानव के लिए वह एक चुनौती है, जिसने मानव समाज को सर्वनाश के कमार पर ला छोड़ा किया है। इसके उत्तर में जरूरत इस बात की है कि धर्म धीर धर्म्यात्म जो मानव जीवन से विच्छिन्न रूप है जीवन में समरथ कैसे जाएँ। हमसे विज्ञान का बिनासकारी रूप भी कल्याण-कारी ही पायेगा।

धनुषज-मान्योत्तम धर्माग्रहाधिक धीर धार्मिक है। यह चाहे जिस नाम से बसे। हमें काम से महत्त्व है धीर इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाए, लाभ बही हीमा। इसलिए धर्मशा यह है कि धार्मिक भी तुलसी द्वारा प्रबलित नैतिक धर्म्युत्पाद के इस पत्र को समझ, करण धीर शौचकर जीवन में

अनुकरण करें, साथ ही उसके आभार पर अपने व्यवसाय उद्योग व धर्म में ऐसे ठोस कदम उठाएं, जिनसे जन-जीवन को भी प्रेरणा मिल सके। धर्म केवल नाम सेने जप-त्रयकार करने और मस्तक झुकाने से नहीं होता अपितु आचरणों में परिलक्षित होता है।

मानवता की महान् सेवा

—जगराज्यपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

आज सोमों में जो नैतिक पतन हो रहा है उसे देखकर मेरे हृदय में एक व्यथा पैदा हो जाती है। लोग बात अहिंसा की करते हैं पर समय आते ही हिंसा करने को तैयार हो जाते हैं। अणुबomb-आन्दोलन की शर्तियों से मैं चिर-परिचित हूँ। मानवता के परिनाश में यह महान् योग दे रहा है। अहिंसा सत्य अर्थात् ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह—ये ही ऐसे सार्वभौम तथ्य हैं जिन पर सारा संसार टिका हुआ है। पंचमीम भी इसमें समा जाते हैं। अणुबomb-आन्दोलन इन्हीं पांच तथ्यों को अणु से प्रारम्भ कर महान् में परिवर्तित करना चाहता है। यह मानवता की महान् सेवा है। जन-जन में अहिंसा सत्य का प्रसार हो इसमें बढ़कर मैं कोई सेवा नहीं मानता।

भारतवर्ष धर्म प्रबल देश था पर आज तो भारतवासियों के बिचारों में अस्तित्व और आचार में पूरा नास्तिक्य उपलब्ध होता है। आज तो सोमों की यह स्थिति है जिसका परिचय बिष्णु पुराण में ऋषियों ने इस प्रकार किया था—यन-संग्रह तो हमारे अक्षय धर्मों का हेतु है अस्त्र ही हमारे जीवन व्यवहार की जय का हेतु है, मृत-भारण हमारे विप्रत्व का हेतु है और वेद भारण ही हमारे आश्रम का हेतु है।

प्राधुनिक युग का आन्दोलन

—सात्कासीन अमर्षत्री श्री कच्छुभाई विसाई

सत्य अहिंसा अैनधर्म का मूल मक्य विन्गु है पर आज का जीवन मौतिक अकाशीन में से गुजर रहा है। अतः आज सत्य अहिंसा से अधिक अपरिग्रह पर धन देन की आवश्यकता है। यदि अपरिग्रह को लेकर आन्दोलन किया गया तो सत्य अहिंसा अपने आप आयेगी। आज अत्यन्त और हिंसा बढ़े हुए हैं इनका मूल कारण परिग्रह है। अ्यक्ति मंग्रहसीन है अतः संग्रह के लिए वह सब कुछ कर लेता है। मगवान् महावीर यदि आज पैदा होते और वे प्राधुनिक युग की विमूर्ति के रूप में उपदेश करते तो मैं समझता हूँ कि वे वर्तमान के मौतिक आन को सामने रखकर उपदेश करते। अमी-अमी में दखिण का दौरा करके आया हूँ। मैंने कहा था—मार्सट् युरा नहीं था। वह तो जीवन को सुखी बनाता आया था। पर आज यदि वह पैदा होता तो वह भी बुनिया को अहिंसा का ही पस्ता दिलाता। इसी तरह मगवान् महावीर या बैबिकों के वेद या अम्य कोई भी सम्प्रदाय सब युगानुक्रम अने और इसी कारण जनसाधारण ने उनके विचारों का अनुममन किया। अणुव्रत-आन्दोलन को भी अपने विचारों को उसी रूप में रखना चाहिए जिससे सर्वसाधारण के दिल पर वे अतर कर सकें। यह सुखी की बात है कि ऐसा किया भी जाता है। अणुव्रत-आन्दोलन प्राधुनिक युग का अतधर्म ही ठी है। बैतिक और आध्यात्मिक जीवन हड़ होने में सब समस्याएँ हल हों सकती हैं। अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक और आध्यात्मिक जीवन निर्माण का प्रेरणा स्रोत है।

बैसे संसार कभी दोष-विमुक्त नहीं रहा और न रहेगा ही पर उसमें अनुचन तो रहता ही चाहिए। इसके लिए सभी अरुद्धे आदमी प्रयत्नशील हो

रहे हैं। धाज क्या नहीं है? सब कुछ है, सिर्फ अनुभव नहीं है। बाठ, पित्त व कफ के अम्लसुअम से शरीर में बीमारियाँ पैदा ही जाती हैं और जब तक वे अनुभवित नहीं होते तबसे कुछ न कुछ कसर रहती ही है। पर शरीर में उन दोषों की निकालने की शक्ति होती है। वह दोषपूर्ण तत्वों को मज-मूत्र के जरिए बाहर निकालता रहता है। इसी तरह धाज के समाज में बुराइयों को निकालते रहने की शक्ति होनी चाहिए। समाज यदि बुराइयों को रवान नहीं देगा तो वे अपने प्राप मिट जावेंगी।

धाज हमारी संस्कृति पारबान्य संस्कृति से प्रभावित है। यूरोपीय मन्मता के प्रवास में जोम भीषिया गए हैं। उसके अनुभवों की अवनाने की जगमें शक्ति नहीं और दुर्गुणों को सहज ही अवनान लिया जाता है। ऐसे समय में अनुभवत भान्दोवन के द्वारा जो प्रवास किया था रहा है, मैं उसका स्वागत करता हूँ। यह धीर सुधी की बाठ है कि उसमें कतई साम्प्रदायिक नू नहीं है।

अणुवर्तों का अथ नैतिक व्यवहार

—डा. हरेकृष्ण मेहता
 तटकासीम राज्यपाल, बम्बई

मुनि भी मगरबजी ने असीम अनुग्रह कर मुझे अणुवर्त-ग्राम्बोलन से सभी भांति परिचित किया जिसकी स्फुट चर्चाएं कुछ वर्षों से मैं सुन रहा था। यह ग्राम्बोलन जीवन के समस्त पहलुओं में नैतिकता एवं चरित्र का प्रदर्शन निर्माण करने वाला है। यह किसी सम्प्रदाय विषय की भूमिका पर आधारित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक आचरण करना चाहिए, फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो और उसने अपने जीवनयापन के लिए कोई भी व्यवसाय क्यों न अपनाया हो ? यही अणुवर्त-ग्राम्बोलन का अर्थ है।

जीवन में अन्तिम सफलता प्राप्त करने का नैतिक आचरण ही मापदण्ड है। कुछ सीमा तक यह अवश्य होता है कि धर्मनैतिकता (धृतेता) को किसी माने में सफलता प्राप्त होती है परन्तु समस्त रूप से नैतिकता की उन्नी विषय होती है क्योंकि किसी व्यक्ति के पास इसके लिए आवश्यक शिक्षण प्राप्त हो।

प्रायः के इस प्राबुधिक युग में जबकि मनुष्य ने आत्मा से अपना सम्पर्क खो दिया है और अपने ही अहं के प्रभाव से निर्मित उन्मत्तों व अन्धेरे से निष्कर्षने के लिए छटपटाता है इस प्रकार का कोई भी ग्राम्बोलन जो मार्ग-दर्शक का आधार देता है उसका अत्यन्त स्वागत है। अणुवर्त भी इसी दृष्टि से अभिन्नवर्गीय है। यदि इस ग्राम्बोलन से अल्प संख्या में भी स्त्री और पुरुष प्रभावित हो सके तो इससे मानवता की बहुत बड़ी सेवा होगी। इस

१

प्रकार के धान्दासन को धयिक संस्था में मानने वाले हों ऐसा न ली उद्देश्य होना चाहिए धीर न ऐसे उद्देश्य की आवश्यकता है। ऐसी प्रवृत्तियों का उत्पन्न में होता है न कि संस्था में। मेरी प्रार्थना है कि युवकों का ध्यान जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए नैतिक धाचरण के प्रति आकर्षित हो।



धान्द्योतन की सफलता

—श्रीमती रामेश्वरी मेहता

साधु-सन्तों की परम्परा हमारे देश में बनी घाटी रही है। सीमास्य से भारत की पृथ्वी भूमि बड़े-बड़े सन्तों को जन्म देती रही है और प्रायः भी अनेक उच्चकोटि के सन्त विद्यमान हैं।

हमारे देश में समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने और उसे पुनीत बनाने में सन्तों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उनके उपदेश कथा-वार्ता और प्रचार से स्त्री-पुरुषों को धार्मिक जीवन बिस्ताने का प्रोत्साहन और अपनी गलतियों व बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। आजकल अग्रणी पढ़े-लिखे लोगों की साधुओं में श्रद्धा नहीं रही है। उसका प्रमुख कारण यह है कि बहुतेकों ने साधु-वृत्ति को एक पेया बना लिया है। केवल भयवाँ बस्त्र पहनकर ही वे साधु बन जाते हैं। इसीसे साधुओं की शक्ति जाती रही है। फिर भी कहीं-कहीं ऐसे सत मिल जाते हैं जिनमें संसार के परोपकार की अद्वय्य शक्ति रहती है।

स्वैतान्तर धर्मों के एक ऐसे ही सत आचार्य श्री तुमची हैं जो अणुगत के नाम से एक पवित्र धान्द्योतन बना रहे हैं। निःसन्देह यह अथवा और हृदय को पवित्र करने वाला धान्द्योतन है जिसे हम लोगों को सच्चाई के साथ अपनाना चाहिए।

हमारे समाज में भ्रष्टाचार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। सच्चाई और ईमानदारी का मूल बट रहा है। ग्राह्य पदार्थों में छुट्टी वस्तुएँ मिलाना और बाजारों में बूझोरी व्यवहार सब ही जारी हैं। इस धान्द्योतन के जरिए, लोगों को समझाया और बताया जाता है कि इन बुरे कर्मों को छोड़ें। इस प्रकार के

मिए स्त्री-मुरयो की समाएं की जाती हैं । धार्मिक भी के विषय बर-बर भूमकर लोभों से बचन सेते हैं । सत्पथ पर चलने का बत मिठाठे हैं धीर शर्मा प्रकार उभें प्रणुवती बनाकर इस नैतिक समुदाय में छपीक करते हैं ।

चित्त भी लोग सहाचार का बत से जतना ही हमारे समाज के उत्थान के लिए कामकारी है । मैं इस आन्दोलन का फलना-फूलना धीर बचना चाहती हूँ ।



राष्ट्र व सस्कृति का नव निर्माण

—श्री पुण्डरीकमहाल भार्गव

इस समाज में जहाँ वैज्ञानिक युग धाय बढ़ना चला जा रहा है वहाँ हम यह नहीं चाहते कि अपने जीवन का बहुमूल्य समय प्राथमिकता की घोर कर्षण करें। भारतीय संस्कृति सर्वत्र स्वयं प्रकाश रही है और वेदव्यक्तियों का आचरण भी प्रच्छन्न रहा है। चिरकाल तक जीवित रहने वाले महापि-महात्माओं ने भी यही कहा है कि मानव मात्र का आचरण प्रच्छन्न है। पशुओं के समान आचरण न हो।

वैसे यह संसार कुछ और प्रकृतियों मलाई और कुट्टी बानों की खान है। हम इन सेत कुट्टानों पर आते हैं। अगर हम इन होत्रों को भूषण की कुत सेते और पानी को स्वयं देते। इसीलिए संसार के समस्त मुर्गों को कर्षण के लिए हम महा-चरणीय बनना चाहिए। परमात्मा ने जिस सृष्टि की रचना की है वहाँ मलाई के साथ कुट्टी भी पैदा हो गई है। लेकिन प्राचार्य श्री तुलसी जीओं के साथ रहकर हम जान सकते हैं कि हमें अपने जीवन में कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए। अगर हमें मत्स्य बनना है तो सङ्घर्षों का ही आचरण करना चाहिए। अगर हमें अपने समाज राष्ट्र व सस्कृति का कल्याण करना है तो प्राचार्य श्री तुलसी के मार्ग पर चलना चाहिए।

हम अपने जीवन में प्रकृतियों के द्वारा प्रकृतिक बड़े-बड़े कार्य व सुधार कर सकते हैं। बतों के द्वारा हम अपने जीवन को विकसित-नुसुख व सवाचरणीय बना सकते हैं। मानव जीवन के कल्याण के लिए पंच महावर्तों का पासत करना आवश्यक है। प्राचार्य श्री तुलसी के उन मन्त्रों को मैं भूल नहीं सकता कि अज्ञा और विद्याम का संकर ही हम समाज को उन्नति के मार्ग पर प्रवृत्त कर सकते हैं।

ब औपचारिकता में बन्धकर रह गया है। सिद्धान्त यह मानते हैं—आत्मा धमर है सब ममान है किसी के प्रति भी कुतुप्पा के भाव क्यों रखे जायें ? यदि इस प्रकार ध्रुव रूप में हमारप बिस्वास होता तो हम औपचारिकता में क्यों कंस मये होते ? पर हम असे । हमारप कुर्माम्य है कि धमने पूर्वकों के बछामे हुए सिद्धान्त को निकाल सत्य समझते हुए मी उग्हें धमने जीवन में उतार नहीं पाले । ऐसी स्थिति में धमनुषत-धाम्नीसन को मी राट्ट के लिए एक उपयोगी धाम्नीसन मानता है । धमनुषत धाम्नीसन के सिद्धान्तों पर धारक्य हुए बिना सामाजिक धीर राष्ट्रीयता उन्मत्त नहीं हो सक्ती है । यही कारण है कि ऐसे धाम्नीसनों की बहुत बड़ी महत्ता धीर उपयोगिता है । भारत में बित्तने मी धर्म पैदा हुए, उनके धनुषतार यहा केवल मुझे पठन-पाठन या ज्ञान की ही महत्ता नहीं रही । मी ज्ञान को हीन नहीं मानता पर जिस ज्ञान के पीछे जीवन नहीं है, उक्त ज्ञान में यथार्थता नहीं । बाय म एक धम्मच राककर ब्याबा पड़ गई, पुस्तके से ज्ञान-पीले हो बये । बहां ज्ञान जीवन में कहाँ उतरा ? बित्तने जीवन के धारकत तस्कों को धकले धामयें बछारा बही लही माने में ज्ञानी है । किसी धारकतय पीछे से पूछो ज्ञान क्या है ? बहु म्मट कह देगा—बुद्धि-बैभव-सम्पन्न बतो यही ज्ञानोपलभा है, पर भारतीय-दृष्टि में धमतर है । बहां तो धाधार्योभाबना, स्वैर्ध धीच धात्मनिग्रह समबित्तता ज्ञान की सक्ती संपदा है । धतरय यदि कोरी बुद्धि-बैभव-संपन्नता ज्ञान ही है तो यथार्थ दृष्टि में बहां ज्ञान नहीं है धमान है । धनुषत-धाम्नीसन जीवन में मन्ने ज्ञान धीर धर्तन को बालना बाह्वा है । इतलिए यह भारतीय समाज के लिए एक धाधरयक धाम्नीसन है ।

भौतिक बिकासमयी धमिधिवियां धाय जिस कोटि पर पहुँची हुई हैं उन्हें उस काटि तक धाने न धाने बित्तनी सत्ताबियां धीर सहायबियां मती हैं । नैतिक धीर धाम्नीसनिक बिकास का धाम्नीसन धी धमना समय मीगा । पर बहु है प्रयति पर । मानव के बीतर यम होव बत्सर धीर ईर्ष्या का जो गुहा-बाजब बैठा है उसे निकालने में समय तो लयेगा ही पर हमें ब्रून नहीं जाना है कि नर में नारायणलाल है उक्तको यह धाम्नीसन बिकास देता है । सधमुच धानुषत-धाम्नीसन नर की नारायणल बानाने का धमम धरसु मिलेप है । बहु

मानव-जीवन में तपस्या और तितिक्षा का संचार करने वाला एक सबल उपक्रम है।

छाठ वर्ष पूर्व प्राचार्य श्री तुससी ने इस आन्दोलन को जन्म दिया जिसके कारण हमारे वैयक्तिक जीवन में एक नमक विसाई की हमारी जीवनभारा नैतिक जागरण की ओर प्रवाहित हुई। इस महती कृपा के लिए हम सब उनके कृतज्ञ हैं।

भौतिक पदार्थों की अकाशीय में सम्मन है कि कुछ भोग अपरिग्रह की भारतीय परम्परा को स्वीकार न करें, परन्तु जीवन की वास्तविकता इसी पर टिकी हुई है। आज का समाज प्रतिस्पर्ध की भित्ति पर आधारित है और ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार की स्थापना असम्भव नहीं हो कम से कम कठिन प्रयत्न है। क्योंकि जब तक संघर्ष या परिग्रह की भावना सीमित है तब तक वह विनाशकारिणी नहीं परन्तु जब वह सीमा को लांघ जाती है तो वह समाज और राष्ट्र के लिए ही नहीं बल्कि समस्त मानवता के लिए वातक सिद्ध होती है।

व्यक्ति को समाज की इकाई मानकर प्राचार्य श्री तुससी द्वारा जीवन में आत्म-परिष्कार, अपरिग्रह एवं संयम का पाठ पढ़ाना सचमुच ही सपत्न्य है और इस प्रकार व्यक्तिवाद से समाजवाद की ओर बढ़ेंगे तब भारत में ऐसे साम्यवाद का जन्म होगा जो नैतिक तत्त्वों पर आधारित होने के कारण ससार में अतुलनीय व अद्वितीय सिद्ध होगा।

मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख होता है कि हमारे देश में ऐसे कमीने धारमी भी हैं जो इस प्रकार के सर्वजनहितम आन्दोलनों व कार्यक्रमों का भी विरोध करते हैं। किन्तु उन व्यक्तियों को याद रखना चाहिए, प्राचार्य तुससी और विनोबा भावे जैसे महापुरुष इस धरा पर बार-बार पैदा नहीं होते। हम अत्यन्त कमीने और नीच होंगे यदि उनसे साम न लेते हुए आलोचना की किसी छोटी वृत्ति को अनामोदित। यदि ये सन्त चाहें तो एकान्त में बैठकर भी अपनी आत्म-साधना में लय सकते हैं क्योंकि इनमें ब्रह्म-विद्या है। पर हिमालय से कम्पा-कुमारी तक पैदल घूमते हुए जो हमारा उद्बोधन कर रहे हैं उन्हें हम विरोध का उपहार दें ? मुझे कुछ एक व्यक्ति कह सकते हैं—मुम बहुत अनामक हो।

धीम ही विचलित हो जाते हो । परन्तु एक मध्य व्यक्ति यह सब कैसे कह सकता है ? जो हमारी पूजा यज्ञा धोर घाबर के स्थान है उन्हें कोई अपवित्र बनाने का अनधिकार प्रयत्न करे ? जो जीवन-प्रणाली के महान् दीप-स्तम्भ हैं अहिंसात्मक धोर नैतिक वास्तुति के सूत्रधार हैं उनके प्रति हमारा यह धर्मण्य ? मुझे नहीं लगता इनमें कीवसा मनुष्यरब नहीं रह जाता है ? आचार्य श्री तुलसी जगने प्रति की गई आलोचनाओं का स्पष्टीकरण करते हैं, पर प्रतिकार नहीं करते यही उनके व्यक्तित्व के अनुकूल है । इस प्रकार की बेवटायों से समाज का आनन्दान उठना चाहिए । ऐसा करने वालों को अहिंसा प्रेम व स्नेह से प्रबुद्ध करना चाहिए कि आलोचना की घोड़ी दृति से इन पद्मपुष्पों की कोई क्षति नहीं होगी क्योंकि वे तो मोनास्क रूप हैं । यत इनकी निन्दा करके कोई क्या पा लेगा ? इन मग्ना पर तो ऐसी तुच्छ बातों का कोई प्रभाव पड़ता नहीं । इसमें तो आलोचना की ही धनि है ।



एक कल्याणकारी योजना

—श्री जयजीवनराय
रेल मंत्री, भारत सरकार

धाम बुनिया में बुराईया आ गई हैं। जारों और धर्मतिष्ठा का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में जीवन के मूल्यों को बरतने के लिए समाज के कुछ व्यक्ति धनुवती बनकर नैतिकता की धोर कब्र बड़ा रहे हैं। यह एक कल्याणकारी योजना है। मेरे एक मित्र बर्म में हजारों रुपों का धान करते हैं, लेकिन चाहते हैं कि इन्कमटैक्स में से कुछ रुपए बच जायें। भोग सोभते और समझते हुए भी धर्मतिष्ठा की धोर झुक जाते हैं। एक समय वा जब बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा भी एक सामारख सम्पासी के भागे छिर झुकते थे। लेकिन आज हमारी प्रकृति बदल गई है। किसी सम्पासी में अगर भौतिक पराबों को प्राप्त करने की सक्ति हो तो धाम लोग उनके चरखों में झुक पड़ते हैं। हम सम्पासी की इज्जत करते हैं अगर उसके पास चमत्कार हो बन बनाने की कछमात हो किन्तु जहाँ नैतिकता का उपदेश दिमा जाता हो लोग जहाँ पास तक नहीं फटकते जाते वे बन-हिठ के लिए अपने प्राण होम कर दे। भोग यह जानते हैं कि भूठ बोसना पाप है। परन्तु जहाँ स्वार्थ का सवाल घाया जहाँ यह सवाल घाया कि जहाँ के अन्दर एक मसत बात लिख देने से बस हजार रुपए मिल सकते हैं, जहाँ पाप और धर्मतिष्ठा का कोई खान नहीं रहता। यह इस देश की बात है जहाँ हम बर्म की धार्मिकता का राम अनापत हैं।

अब आज इस धोर भी मुझिए, जिन देशों को हम धर्म-अपान नहीं करते। यह जानकर लोगों की धारबर्म होगा कि यूरोप और अमेरिका में कोई धारगी नेता नहीं मिलेगा जो बूम में पानी मिलाता हो। हमारे यहाँ का एक विद्यार्थी

विनायक डाकटरी पास करने के लिए गया। बच्चा के विद्यार्थी होटलों में नहीं रहते परिवारों में रहते हैं। वह एक स्वामी के परिवार में ठहरा था। एक दिन स्वामी की लड़की उससे कहने लगी कि धान १० पीण्ड दूध की घबिक धारमकता है जिसके लिए वह बड़ी हैरान थी। विद्यार्थी बोला—इसके लिए इतनी बिम्ता क्या? दूध में १० पीण्ड पानी डाल दो। वह बौड़ी हुई अपने पिता के पास गई और कहने लगी—पिताजी! यह कैसा मर्बकर व्यक्ति है जो दूध में पानी मिलाने की बात कहता है। पिता उसकी बात सुनते ही हिम्बुस्तानी से धाकर बोला—क्या हम पोड़े से लाभ के लिए दाह के स्वास्थ को बिपाड़ हैं? लड़कें को सुरलत घर से निकाल दिया गया। उस देश का स्वासा भी वैतिकता का बिदना ध्यान रहता है। इन बोड़ से लाग के लिए देश के स्वास्थ को बिपाड़ने से नहीं हिब किबाते। यह कैसी वैतिकता है।

दूनरा उराहरण हमारे यहा के एक मुसलमानमिष का है जो बिहार एस्वमी के सवस्थ है। वे बी० ए पास कर केकार बैठे थे। एक मारबाड़ी में उनसे कहा—वहाँ एसीन में भी बहुर होता है धीर वे अपने यहाँ से बी की बटौब करौकत किया करें। वे कई दिन तक बी का ध्यापार करत रहे। एक बार उनको कतकता के एक घाड़तिए में पूछा कि घापको क्या लाभ रहता है? उनको को योडा-बहुत लाभ रहता था वह साक-साक बतला दिया तो उस घाड़तिए में कहा तुम क्या लाभ ध्यापार करोगे? उन्होंने बताया कि बी में साप की बर्बी की मिनाबट करने से लाभ घबिक होता है। वह कहने लगे साप की बर्बी? हाँ मारई। साप की बर्बी में क्या बिष नहीं होता? हम बाजार से जो बीकेकर पाते हैं, उनमें बाब भेस मुयद, साप न जाने किम-किम की बर्बियां होती हैं। मिलाने वाले के लोग हैं जो बड़े-बड़ी घर्मयालाए बनाते हैं, घर्म के नाम से बड़े-बड़े बग्गे धीर दान बैठे हैं पर ध्यबहारिक जगत् में वे कितनी घर्मविकता व कितना पाप करते हैं। बुधरे देशों के घमपड़ घाड़नी कितनी वैतिकता की बात साप सफटी हैं। जिनके लिए इन कहते हैं, घर्म-घर्म वा कोई धाबार वा बिचार नहीं है; उनमें घाज कितनी वैतिकता की महानता है। मैं जब सन् १९४७ में विनायक गया वहाँ पास करत सब बीजों पर कन्ट्रोल् था। कैसा कन्ट्रोल यहाँ पर कमी नहीं

हुआ। वहाँ हमें चाक्रेट का कूपन मिला। हम उसकी आवश्यकता नहीं थी। एक मोटर ड्राइवर महिमा सेबर मिनिस्ट्री की वहाँ भ्रमा करछी थी। मैंने उस महिमा से कहा कि यह चाक्रेट का कूपन आप से लीजिए, आपके काम आजाएगा। वह बोली—मेरा कूपन बना हुआ है। इसका मैं क्या करूँगी ? मैंने कहा—अच्छा घर में बच्चों के लिए ही सेबाइए। वह कहने लगी उन सबका कूपन बना हुआ है। अगर आपको चाक्रेट की आवश्यकता नहीं है तो कूपन फाड़ कर फेंक दें। जितना चाक्रेट बच जाएगा वह विदेशों में भेजकर हम मुद्रा प्राप्त कर सकेंगे।

अकिन हमारे यहाँ क्या होता है ? यदि देश में किसी वस्तु पर कब्जोत हा जाए तो बड़े से बड़ा आदमी भी यह प्रयत्न करता है कि घर में घर सात व्यक्ति हैं तो नौ व्यक्तियों के काबं बनें। इसलिये हमें अपने जीवन के मूर्खों को बदलना होना। याब हम अपने आदर्श से बिर गए हैं और दूसरे देशों के लोग जीवन के सच्चे आदर्श की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। हम भौतिक वस्तुओं को जितना महत्व दे रहे हैं, वह न केवल हमारे आत्मिक बल्कि भौतिक नाश का भी कारण बनेगी। अस्तु, हमें अपने जीवन का पुनर्मुर्खांकन करना है।



अणुव्रत मरुभूमि में एक जल-स्रोत

—श्री हरिबाबू उपाध्याय
बिस्तम्बी, राजस्थान

जब तक मनुष्य का जीवन प्रतों के अधीन नहीं होता, उसमें तेजस्विता नहीं आती सवोदुःख नहीं आते। वहाँ जमी दिखाई देती है। व्रत मानव को प्रसंगम से बचाए रखने का साधन है। यदि व्यक्ति अपने जीवन को टटोल कर देखे तो उसमें जो कमियाँ आई हैं, वे क्यों आई हैं तो उसे पता भरते देर नहीं सबती कि उससे प्रतों का सम्बन्ध हुआ है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रबलित अणुव्रत आत्मोत्तम प्रतों का आत्मोत्तम है। जीवन-सम्बन्धकार को कुछ और आत्मिकता का क्या मोड़ देने का आत्मोत्तम है। नाग प्रकार के तुलसी से प्रदीक्षित मानवता के लिए यह आत्मिकता ही उपक्रम है। आज के मानव-जीवन की मरुभूमि में यह एक जलस्रोत है। मैं तो क्या संसार का बड़े से बड़ा व्यक्ति यह मानेगा कि आज संसार में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। आज विभिन्न जनों के आचार्यों और सन्तों का भी कुछ-कुछ अन्तःकरण-सौकर्य-साधककारी कामों की धोर जाते सया है, पर आचार्य श्री तुलसी ने क्यों पूर्व इस अरि-मुक्ति-सूत्रक आत्मोत्तम को शुरू किया जब दूसरे इसकी जहाँ तक नहीं करते थे। यह वास्तव में बड़े बीरव की बात है। अणुव्रत-आत्मोत्तम के कार्य के साथ वेचन भारतवर्ष में ही नहीं संसार के लोग होने ऐसी मेरी मान्यता है।

आज हमारा देश एक बैसपैर स्टेट है, कल्याणकारी राज्य है। यह तो हम लोगों का कार्य है जो राज-राज में भाग लेते हैं कि देश के लोगों को सन्ने कल्याण की धोर से बाण। हम वास्तव में आचार्य श्री तुलसी के व्रत हैं कि वे

हमारे इस काय का वही सगन के मास भाग बड़ा रहूँ है। अतः सब भावों का उनसे प्रेरण लेनी है। प्रसुप्त-आत्मोन्नति मद्भावना और प्रेम सिखाता है। मद्भावना और प्रेम की बहुत बड़ी कीमत है। चाए दिन के म्हाड़े मिटाने को लोग ग्यायात्रियों क दरबाज घटसटाने हैं। ग्याय मिमता है। एक को सन्ताप और दूसरे को असन्तोष होना सहज है। असन्तोष और भाग बढ़ता है। ऊँची प्रशासक में जाता है। सुप्रीमकोट के बाहर तो उसके लिए कोई रास्ता नहीं। यह सच है, वहाँ भी जो ग्याय मिमता है, उससे दोनों को सन्तोष नहीं होता। पर प्रेम और मद्भावना से ऐसा होता है—दोनों को सन्तोष मिमता है। माई-माई में म्मयड़ा है। एक माई प्रेम से दूसरे माई को कहूँ कि जा कुछ है तुम से सो। मुझे कुछ नहीं भेजा है, मैं बर सोइकर बसा जाऊँगा। तो क्या यह सम्भव है। दूसरे माई उसे ऐसा करने देगा? कभी नहीं करन देगा। यह प्रेम और मद्भावना का प्रभाव है। ग्याय जिसके पक्ष में है उस पक्ष का वह अधिकारी बनकर है। पर मैं ग्याय से प्रेम और मद्भावना की कीमत ग्याया करता हूँ।

व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है, इसलिये मनुष्य की उन्नति और अवनति समाज की उन्नति तथा अवनति है। जो जिन बात का भुनकर केवल समाज की सेवा का और उन्नति का विचार करते हैं वे हवा में उड़ते हैं। व्यक्ति की तरह समाज भी कुछ नियमों के अधीन रहकर ही अपनी उन्नति और विकास करता है व कर सकता है। अतः नियमों और प्रणालियों का भी प्रभाव मनुष्य व समाज पर पड़ता है। परन्तु यदि नियम और प्रणाली बिगड़ी हुई हो और व्यक्ति अशुद्ध हों तो वह उनको सुधार कर अशुद्ध परिणाम सा सकता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति बिगड़ा हुआ हो और नियम प्रणाली अच्छी हो तो उससे अशुद्ध परिणाम निकलना सहसा कठिन होता है। नियम और प्रणाली का प्रभाव भी तो अधिक व्यक्ति है। अतः व्यक्ति सब तरह से प्रधान है। ऐसा होते हुए भी व्यक्ति का जीवन समाज को समर्पित न हो तो फिर उन्नत व्यक्ति अशुद्ध परिणाम में निरर्थक हो जाता है।

प्रसुप्त-आत्मोन्नति के जो चार महान् उद्देश्य हैं उनको देखन व लिखन

हो जाता है कि व्यक्ति का चरम सीमा तक पहुँचाकर उसको समाज वा समष्टि को समर्पित करने का पूरा आग्रह है। यह आग्रह उक्त महापुरुषों के द्वारा प्रकटित हुआ है जिनका सम्प्रदाय एक तरह से निवृत्ति का हामी है। आधुनिक युग में आचार्य तुलसी जीन समाज में पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने निवृत्ति मार्गी मुनि और सन्तो की जन-अभ्यास की धर्म की प्रकृति में जाने का सतत प्रयत्न किया है। मरौ समझ से निवृत्ति कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह प्रकृति की पूरक मात्र है। उत्प्रकृति ही जीवन का धर्म है। निवृत्ति की मानना है प्रकृति करनी चाहिए, यह उसका धर्म है। केवल प्रकृति स्वेच्छाचारी और स्वच्छन्द बन सकनी है और केवल निवृत्ति अकर्मण्य व धारणी हो जाती है। केवलता पर जोर भावकावस्था में उक्त समय तक दिया जा सकता है जब व्यक्ति उनके बरे प्रकृतिक मित्र न हो जाता है। जब निवृत्ति की मानना से प्रकृति से भी सहज स्वाभाविक रूप में रोप रह जाती है। वैदिक धर्म में जिसको जीवन-मुक्ति या विवेकावस्था कहते हैं वह सम्प्रदाय ही स्थिति है।

मात्रकम धर्मपुत्र्य प्रकृति और वह भी उपादानर अवानी जमान-अव का बड़ा योग है। अनुप्य स्वार्थ के पीछे इतना धर्म्य हो गया है कि स्वार्थ-विविध का भी मनी प्राप्त उक्त नहीं सुझता। धर्म हय ईर्ष्या कलह की प्रकृतियों बढ़ती पर है और स्नेह, दया सहयोग शान्ति की भावनाएं उसके धामे बन जाती हैं। इस बीमारी को आचार्य जी तुलसी ने धर्म्य तरह समझ लिया है और उसको दूर करने का भी उपाय उन्होंने सोचा है उसमें अधुवत-आग्रहोत्तन एक मुख्य उपाय है। यह जीवन-परिवर्तन करने का प्रयत्न है। जीवन-परिवर्तन के लिए विचार-परिवर्तन आवश्यक है। जिन्होंने आचार्य जी तुलसी के प्रवचन सुन या पढ़े हैं वे जानते हैं कि आचार्य तुलसी विवेक-बुद्धि को जाहूत कर, समझकर जीवन-परिवर्तन करना चाहते हैं अपने व्यक्तिगत और धारण के धर्म पर नहीं। बसकि वे दोनों धर्म उनके पास भरपूर हैं। यह उनकी नार्थपद्धति की विशेषता है।

विचार-परिवर्तन में जीवन-परिवर्तन पीछा बहुत प्रयत्न प्राप्त हो जाता है। परन्तु वह स्वाधी नहीं रह सकता है जब जीवन वा कायधर्म भी लेना बना विचार

बाय । विचार और भावना के परिवर्तन की सफलता व सार्थकता जीवन-परिवर्तन में है ।

यै अनुसूत-आन्दोलन को इस महान् परिवर्तन का एक बड़ा साधन मानता हूँ और मुझे विश्वास है कि छात्रार्थ भी तुलसी जैसे महान् व्यक्ति का परिष्कृत मनको सफल बनाए बिना न रहेगा ।



यह हसाहस कौन पियेगा ?

—धी बिलु प्रजापति

मात्र संसार में एक बड़ी विचित्र बात देखने में आती है। इन पुरुषों के बिना देवागुरु संघाम की कर्षा मुमते के यह मात्र प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। एक और मनुष्य विज्ञान की प्रगति के नाम पर विनाशकारी यन्त्रों की खोज में पागल हो रहा है। इसी धार बही मानव उनसे ज्ञान पाने के उपाय सोचने में व्यस्त है या कम से कम वह इनका उपयोग अपने कल्याण के लिए करना चाहता है बिनाश के लिए नहीं। एक माय प्रकृति और सृष्टी के मार्ग पर चलता हुआ मानव मात्र बीने का मया है। जैसे धन्य गति की खोज में वह अज्ञान होकर धर्म की पुकार लगा रहा है। देवागुरु-संघाम में जो स्थिति तब हुई थी जब संसार में इनाहल का जन्म हुआ था वही स्थिति मात्र दिखाई देनी है। प्रकृत की खोज में जैम उनके हाथ में इनाहल ही था मया है। इस इनाहल के धर्म-बाह्य में बराबर चल है लेकिन धरर का बही पता नहीं लग रहा है ? न जाने किम दिन जम नीलकण्ठ का उदय होना और तभी यह धर्म मानवता ज्ञान या सौखी और सभी प्रकृत का उदय हुआ उमते पहले नहीं। मात्र का मानव स्थिति की समझता में हो लेती बात नहीं बल्कि ऐसा मानव होता है कि मात्र का प्रत्येक प्राणी इस स्थिति को समझ रहा है और संकर की खोज में पागल है। लेकिन धूम-धूम में घंटर होता है। देवागुरु संघाम के समय एक संकर प्राणीमात्र की रखा कर सकते हैं समर्थ है। उनके लेखन मात्र जो इनाहल है वह किसी एक संकर के बस का नहीं। उनके लिए तो संकर की वह गति जम जम की घाने भीतर प्राण करनी होती। बहुत म

बनीयी इस तथ्य को समझ रहे हैं और अपनी-अपनी शक्ति क अनुसार प्रयत्न में भी लगे हैं।

आज इस साम्प्रदायिक और अमान्यता के संघर्ष के नीचे एक और संघर्ष है। वह इसके अन्तर्गत हो यह बात नहीं बल्कि इसीका परिणाम है। वह है—समाज का संघर्ष। हमें ऐसा लगता है कि जो समाज में रहता है। उसका मुख्य ध्येय अपनी सेवा करना नहीं बल्कि समाज की सेवा करना। समाज की सेवा में ही उसकी अपनी सेवा है। नारायण ही तो गर अर्थात् मानव के धरर रहते हैं। उनकी सेवा करने के लिए मनुष्य की सेवा आवश्यक है और मनुष्य की सेवा के लिए स्वार्थ का त्याग परम आवश्यक है। इस एक बात को समझ लेने पर दुराचार और भ्रष्टाचार का कहीं प्रबल ही नहीं रहता। लेकिन यह बात बिलकुल सरलता से कह बी गई, क्या वास्तव में उठनी सरल है? बिलोबा आज व्यक्तिगत मिश्रकियत की भावना को समाप्त करने के लिए मू-बाज पान्थोसन का संघर्ष कर रहे हैं। वे मानते हैं कि कर्मल भूमि की मिश्रकियत मिटाने से काम पूरा नहीं होता, कारणाने और मकानों की मिश्रकियत भी समाप्त होनी चाहिए। हम तो यह कहेंगे कि 'मिथ है' इस एक भावना की मिश्रकियत ही समाप्त होनी चाहिए। समाज में ऐसे परिवर्तन लाने के लिए कई मार्ग हैं। एक मार्ग बिलोबा का है—'मि परिवर्तन लाना चाहता हूँ। प्रथम हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और बाब में समाज में परिवर्तन लाना चाहता हूँ। इस तरह से विविध परिवर्तन, ठिठुप इच्छाओं मेरे मन में है।

इसीसे मिश्रता-कुलता एक मार्ग आचार्य की तुलसी का है। वे भी समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं—धरुवत के द्वारा। धरुवत क्या है? परमाणु बम के और अन्य कृत्रिम आग्नेय के युग में उनका मुख्य क्या है? लेकिन उनका कहना है कि व्यक्ति यदि प्रतिज्ञा कर लेता है कि यह रिश्तत नहीं सेगा या दूसरे के साथ ऐसे काम नहीं करेगा जो समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं तो निश्चय ही समाज को प्रगति के पथ पर आने से आया। हमारा बिचार उनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पर फलदा देने का सतता नहीं है बिलकुल इस बात को

ममझने का कि वास्तव में क्या काम इतना घासान है जितना हम समझते हैं ? इसकी जड़ें क्या बड़ी घासघास ही हैं ? यह ही होकर समाज के घनघनकी पाताल में लौ नहीं उतर गई ? लपटा ऐसा है कि जड़ें कहीं घीर हैं । क्या मनुष्य मात्र दुष्टकारी हो गया है ? वह सुख चाहता है ? सुविधा और सुख चाहता है और उसी के प्रयत्न में वह दूसरों को दुःख देता है और दूसरों पर शास्त्रमय करता है । सब ऐसा ही करते हैं और परिणाम यह होता है कि चारों ओर दुःख और घासघास ही बिखार देता है । यान्त्रिकी पुकार केवल हवा में रह जाती है ।

पुत्र के बाव या किसी भी संघर्ष के बाव मनुष्य मात्रसहीन क्यों हो जाता है ? क्या कभी हमने सोचा कि यह सब इसलिए होता है कि उसका धर्म में विश्वास नहीं रहता । धर्म में विश्वास न रहने का फल है कि वह मानवता में बिस्वास लो बैठता है । एक घटना मुझे याद आती है । पुत्र के बाव एक बहुत बड़े अधिकारी सम्मन गए थे । वे वहाँ हार्डकमिस्टर के दफ्तर में उनसे मिलने पहुँचे । जैसाकि हाता है उन्होंने अपना कोट घीर टोप उतारकर बाहर ही टांग दिया । उनी समय घन्टर से एक सज्जन आ रहे थे । वे खिंचे थे । उन्होंने उस भारतीय भाई से कहा कि जब इन्डियन में वह पहुँचे जैसी स्थिति नहीं रह गई है । पाप अपना कोट धर्म साव घन्टर से जाइय । सायब कोई उठाकर ले जाए । यह उस सम्मन की बात है । वहाँ की ईमानदारी बहावत बनकर रह गई है । लेकिन यह स्वामाधिक ही है । पुत्र का परिस्थिति में मनुष्य की वह सब करण पर विश्वास कर दिया जो वह करना नहीं चाहता था ।

हमारे देश में भी रिक्त और भ्रष्टाचार का जो इतना जोर है वह क्या इसलिए है कि ऐसा करना मनुष्य का स्वभाव है ? क्या वह इसलिए नहीं है कि मनुष्य देना करने के लिए परिस्थितियों द्वारा मजबूर कर दिया गया है ? हमारा विश्वास है कि मनुष्य देना नहीं चाहता । हमारा देश अधिकृतित देश स्वामन्वता नहीं है और अपेक्षाकृत सर्वांग स्वतन्त्र यान्त्रिकी होने पर भी उसे

काफ़ी नयंकर इन्म बेसने पड़े हैं। इन सब कारणों से यह जीवन की यह नून बीछ है। यदि हम उसे फिरसे अपने आपको पा सेने में मदद करना चाहते हैं तो हमें जड़ पर चोट करनी होगी। हमें एक धोर तो उसकी मौतिक प्रावस्थाओं की पूर्ति के साधन उपलब्ध करने होंगे दूसरी धोर उसे अपनी प्राव्यारिभः सक्ति की मद भी दिशानी होगी।

यह सुम मसख है कि हमारे देश में दोनों धोर स प्रयत्न हो रहा है। भारत सरकार अनेक उद्योगों से भारत की प्राथिक स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रही है। मने ही वे प्रयत्न धमी छोटे समय हों लेकिन उनका परिणाम बहुत बड़ा होने वाला है। उद्योग के साध एक दूसरा प्रयत्न भी हमारे देश में हो रहा है। यह है—हमारे सत्तों द्वारा। विनोबा उनमें एक हैं आचार्य तुलसी उनमें दूसरे हैं। आचार्य तुलसी मनुष्य को माद दिशाने में प्रयत्नशील हैं कि उसकी प्राव्यारिभः परम्परा क्या है और उसके पाठ किन्तनी सक्ति है ? उसे उस सक्ति को मूनना नहीं है। वे प्रसोमनों से बचने के लिए प्रतिज्ञा करताते हैं और इन प्रतिज्ञाओं का नाम है, अयुधत। बहुत से लोगों का इस प्रख्यामी से मतभेद हो सकता है लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अयुधत आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है, जिसमें असीम सक्ति जरी हुई है और देश की औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति के साध-साध उसका होना प्रावश्यक है। ऐसे आन्दोलनों के अमात्र में विज्ञान विषय को मसूट कर देया। विज्ञान में यति है, विद्या नहीं। विद्या के लिए प्रात्म-दान प्रावश्यक है।

लेकिन कभी-कभी मन में एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या प्राय के समाज में उन सक्तियों को, जो अविष्य में अष्टाचार से बचने की प्रतिज्ञा सेते हैं, अष्टाचारी न मान लिया जाएगा। हमारे सामने एक उदाहरण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के ठीक बाद एक सक्ति के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि यह उदका देश स्वतन्त्र हो गया है, अब उसे रिखत नहीं लेनी चाहिए। उसन अपनी प्रतिज्ञा की अपने अक्षरों को भी सूचना दे ली। यही नहीं उसने यह भी बताया कि किस तरह से सरकार का स्याम अर्थ जाता रहा है और किस तरह से उसके विभाग के अधिकारी रिखत सेते हैं और उसने भी विभाग

होकर एक बार रिरवत भी थी। अधिकारियों ने उसकी किसी भी बात की घोर ध्यान नहीं किया। बस एक बात पकड़ी कि मने ही एक बार सही उभने रिरवत ही थी और इसी बात पर उसको बर्खास्त कर दिया गया। कानूनी दृष्टि से यह सब ठीक ही हुआ हो लेकिन इस संसार में क्या इसी दृष्टि के सहारे जना जा सकेगा ? क्या परमात्म का दण्ड इसी तरह मुगतना होगा ?

मुझे प्रसिद्ध कहीं उपन्यासकार हास्तोवस्की के एक पात्र का वाक्य यह आया है—'मैंने अपने जीवन में एक ही पाप किया है कि मैंने अपने पाप स्वीकार कर लिए हैं।' क्या भारत में इसी तरह के व्यक्तियों की मिलती बढ़ानी होगी ? मनी पिछले दिनों 'डेमिली ऑफ मैन' जो फोटो प्रदर्शनी अमेरिका की घोर से हुई थी, उसमें बहुत सुन्दर वाक्य थे। बत्र के लिए किसी ने बहुत ही सुन्दर लिखा था। उसका अर्थ था कि हमें ऐसे व्यावसायियों की जरूरत है जो न्याय करने वाले हों लेकिन इतने न्यायी न हों कि मनुष्य की कमजोरियों को ही भूल जायें। भारत के घासन को इस बात से समझ लेना है कि न्याय धन्या नहीं होता उसका उद्देश्य मनुष्य को सुधारना है।

धनी हम प्रयोग की समस्या में हैं। इसलिये निरन्तर से तो कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन यह धान्दोलन मनुष्य के खोए हुए धार्मिक-विरासत को पता नके तो निःसम्भे बहुत ही शीघ्र जब हमारा देश धार्मिक दृष्टि से भी विकसित हो जाएगा तब हम एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में विश्व-विकास में अपना स्वतन्त्र प्रहण कर सकेंगे। हम यह धान-बुझकर कहते हैं और इसलिये कहते हैं कि विश्व के अधिकांश देशों में एक शक्तिशाली हो मनुष्य को उन्नत करने का प्रयत्न प्रयत्न कर रही है लेकिन यह शक्ति धन्युही है। इनको पूर्ण करने वाली शक्ति धार्मिक है और यह शीघ्रताय भारत को ही प्राप्त है कि इस शक्ति को जोड़ निकालने में धार्मिक विनोद और धार्मिक सुनधी हमारे बीच प्रयत्न कर रहे हैं।

अधुनत-धान्दोलन का एक घोर लाभ है और वह लाभ बहुत सुन्दर है। धार्मिक सुनधी जीवन में ही एक धान के धार्मिक हैं। लेकिन इन धान्दोलन के द्वारा वे उपधाना और धार्मिकों की तो क्या मूल धर्म की तीमारों को लाभ

एक भारत के दूसरे धर्मों हिन्दू, सिख, मुसलमान ईसाई आदि के बहुत पाठ आ गए हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उनके अनुयायी हैं। यह बहुत दुःख सख्त है और भारत की परम्परा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उच्चतम प्रमाण है। मने ही इन सब जातों का तुरन्त परिष्कार न निकसे लेकिन यह हमारी परम्परा को भीषित करने वाली है।



अणुवत धर्म और कम का समन्वय

—श्री योपीनाथ 'धर्म' सम्मेलन, जगत गणपति समिति दिल्ली

मंसार की बहुत-सी समस्याएँ धर्म और कम को धर्म-आत्म समझने ल वेबा हुई हैं। आज हम बहते हैं कि मन्दिरोँ और मन्दिरोँ में जामी बीड़ माइ रखी है परन्तु हमारे सामूहिक जीवन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पूजा करनी या भयवान् से अपने पापों के लिए क्षमा माचना कर ली परन्तु मन्दिरोँ ने निकलकर यह समझ लिया कि भयवान् की बात तो भयवान् के साथ है और दुनिया की बात दुनिया के साथ। इसी मूल के कारण धर्म बदनाम हो रहा है। अपने धर्म का सम्बन्ध तो हमारे सारे जीवन के साथ है। भयवान् मन्दिर में भी देखते हैं और दुकान पर भी। वह इतनी-सी बात है जिसे समझने और जीवन में धारण कर लेने की आवश्यकता है।

अणुवत-आत्मोत्तम हमारे वैदिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। हमें बार बार यह याद दिलाता है कि हमें अन्ध देखने की बड़ी जरूरत है। मैं मानता हूँ कि इसके नियम कठिन हैं परन्तु कठिन तो ऐसी सारी बातें होती ही हैं। यदि एक सामारण-सी पंडित भयवान् तो उसे निकालने में भी बर्ब होता है फिर जब अन्ध विकार भयवान् ही तो उसे निकालने में तो कठिनाई भयवान् ही होगी। परन्तु ऐसे और भी हमारे रोग में हैं जो इन वेदना को सह जाते हैं। लोग कहते हैं कि जब हमारे चारों तरफ वेदना को सह जाते हैं। धन-कपट का व्यवहार है तो हम इनसे कैसे बचें? इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि वह कठिन अपने धर्म के द्वारा अनुपम में घाती है। धर्म के बिना धर्म नहीं

हो सकता और इसी प्रकार धर्म के बिना कर्म नहीं हो सकता । कर्म का मुसा-
पार धर्म है और धर्म का दोतक कर्म ।

यह बात धीरे-धीरे समझ लेने की है कि धारम में जितनी कठिनाई होती है उतनी प्रसन्न होने के परभाव नहीं रहती । प्रकृति का यह साधारण नियम है कि प्रसन्न के साथ-साथ सहनशीलता बढ़ती जाती है । इसलिए पहली मंजिल पर जो कठिनाइयाँ बढ़ी गम्भीर होती हैं, वे धीरे-धीरे बसकर साधारण रह जाती हैं । यह बात दूर तक पहुँचती है । प्रश्न यह उठता है कि मुल धीरे-धीरे प्रान्त्य हैं कहीं ? यदि वह बाह्य वस्तुओं में है तब तो किसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेना ही ध्येय हो सकता है परन्तु यदि उसका स्वान्तर मनुष्य के हृदय में है तो फिर बाह्य वस्तुओं के पीछे बौद्धता और मन केन्द्र प्रकरेण उन्हें प्राप्त करने का साहस करना जीवन का कर्म नहीं रह जाता । धनुव्रत-धार्मिक मनुष्य को जीवन का कर्म बतलाता है । यदि हम अपनी धार्मिकताएं सीमित रखें तो हमारा जीवन नियमबद्ध हो सकता है और हम 'मा युम कस्यस्विन्नम्' के पुनीत धार्मिक पर बस सकते हैं और यदि अपनी बाधनाओं को लुप्त कर दे ली जाए तो फिर हमें दूसरों के अधिकार पर प्रसन्न साधा मारना पड़ेगा ।

अपनी बाधनाएं बटाओ जीवन को नियमबद्ध बनाओ, दूसरों के अधिकारों का विचार रखो इन बातों में धनुव्रत-धार्मिक के मुक्त सिद्धान्त धा जाते हैं । साम्यवाद जो कृषि मार-काट के द्वारा धन का आनाछाही राज्य के द्वारा करता चाहता है धनुव्रत-धार्मिक उस कार्य की पूर्ति मनुष्य की स्वच्छता से चाहता है । साम्यवाद इच्छाओं को बढ़ाने में रेष या समाज की उन्नति मानता है, यहाँ हमारी सम्यता से उसका टकराव स्पष्ट हो जाता है । वे जो बड़ी भूल करते हैं जो साम्यवाद के सिद्धान्तों को तो देखते हैं, परन्तु साधनों को नहीं रखते । साधनों को सिद्धान्तों से पृथक नहीं किया जा सकता । यही कारण है कि धनुव्रत-धार्मिक में साधनों पर भी उतना ही बल दिया गया है, जितना कि सिद्धान्तों पर ।

धार्मिक समाज की स्थापना धारम-संघम के द्वारा ही हो सकती है । धनुव्रत

में इसी का सन्देश है। इसकी जड़ें हमारी भारतीय सभ्यता में हैं। जो काम राजनीतिक दलों से नहीं हो सकता वह भूदान और धनुषत जैसे धान्योत्पत्तियों से हो सकता है। विदित है कि इन नियमों पर धमने वाले बतमान धनस्या में तो क्यों-क्यों धनुषतधारिया की बलिदानिया कम होती जाएंगी। भविष्य धन्यकार मय नहीं है यह मेरा निश्चय है। मैं मानता हूँ कि धर्म और धर्म के बीच को एक खाई बन गई है वह दूर हो जाएगी और एक दिन यह विरवाध मनुष्य जाति काय रूप में परिमृत्त करेगी कि जो धर्म है वही धर्म है। धर्म का विरोध साम्यवाद ने जिम भूम न किया है वह उसकी वर्तमान विकृत धनस्या है। धनुषत-धान्योत्पत्त जैसा धान्योत्पत्त इन भूम का जबाब ही नहीं बरन वह उसे दूर भी कर सकता है।

राष्ट्र उन्नयनमें भगुवत का योग

—श्री हज्जबख्श बिलालखान
सम्पादक, सम्प्रदा

किसी देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसकी शत्रुमुखी उन्नति हो। जब किसी देश ने राजनैतिक स्वाधीनता और उन्नति के लिए प्रयत्न किया है तब केवल एक विधा में ही प्रयत्न नहीं हुआ है। विभाजी ने जब स्वातन्त्र्य-युद्ध प्रारम्भ किया उससे पहले सर्वत्र रामदास अपनी उद्बोधक भाषणी में जनता में सामाजिक और सांस्कृतिक जागृति का प्रचार प्रारम्भ कर चुके थे। पंजाब में सिक्खों में राजनैतिक अन्धकार से पहले उनके मुख भूमतमयी किन्तु प्रभावशाली भाषणी में धार्मिक सांस्कृतिक और सामाजिक जागृति का मूलमग्न जनता के हृदय तक पहुँचा चुके थे। नवीन भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन से पूर्व राजा राममोहन राय और शशि दयानन्द सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न कर चुके थे। टर्की के पुनर्निर्माण के समय कमासप्रतापुर्क राजनैतिक अज्ञान ग्रहण करते ही सामाजिक और सांस्कृतिक नव चेतना में उस्ताहज्जुर्क सग मया। अफगानिस्तान या अन्य मुस्लिम देशों की जागृति केवल राजनैतिक जागृति तक सीमित न रही सामाजिक बुद्धिधर्मों का विकास और विद्या-प्रसार भी उसके विधेय भग रहे। सारांश यह है कि किसी देश की उन्नति के लिए केवल एक दोग में एकांकी उन्नति बहुत सफल नहीं होती। सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण उन्नति आवश्यक होती है। मानव प्रारम्भ के प्रकण्ड रूप की यदि उपेक्षा करदी जाए तो वह उन्नति स्वामी नहीं रह सकती।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत का जिन पश्मीर समस्याओं का सामना करना पड़ा वे अनेक प्रकार की थीं। देश के नेताओं ने अत्यन्त धैर्य और साहस

के साथ उनका समाधान करने का प्रयत्न किया। सरलार्थियों का पुनर्वास, धन-संकट का निवारण औद्योगिक धारण-निर्भरता तथा विभिन्न मौक्तिक समाधियों की पूर्ति के लिए समस्त देश पंचवर्षीय योजनाओं के मातृ प्रयत्नशील हो उठा। इन सब प्रवृत्तियों का परिणाम भी सन्तोषप्रद प्रकट हो रहा है। इसकी सफलताएँ इतनी प्रत्यक्ष हैं कि उनका सम्येक करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इन सफलताओं के होते हुए भी देश के नेता धीर विचारक यह धनुषत कर रहे हैं कि हमारी गति धीर भी तेज हो सकती थी यदि हमारे नैतिक सामूहिक धीर सामाजिक चरित्र का बरतलत ऊँचा हो जाता। यह ठीक है कि कृषि धीर उद्योग का उत्पादन बढ़ गया है। रेशों व तकियों का विकास हो गया है धीर राष्ट्रीय धारण बढ गयी है किन्तु इसके साथ-साथ नैतिक चरित्र का विकास नहीं हो रहा है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र कुछ विचारकों की सम्मति में पिरता जा रहा है। सामुदायिक योजनाओं और सामाजिक विकास के कार्यों में त्रिस्त उन्नत चरित्र की प्रेरणा है, उसकी मागारियों में कमी है। एक राज्य के उद्योगमन्त्री ने इन परिस्थितियों के वैमर्क से कहा था कि मैं तो उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की सम्मता की प्रयत्न करने में देखा हूँ। अब तक सरकारी कर्मचारियों और नागरिकों का नैतिक चरित्र ऊँचा न होना उनमें ईमानदारी की धारणा पैदा न होनी, सरलार्थ उद्योग सफल नहीं हो सकते धीर धारण हमारी स्थिति इन दृष्टि से समझाकर कमजोर होती जा रही है। उम्होंने धारणत कुछ धीर निराशा भरे धारणों में मुझे फिर कहा था कि "उन्नत नैतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद हमारी दृष्टि ही बदल गई है। पैसा ही धारण हमारा एकमात्र धारण हो गया है। नैतिकता धीर सामूहिकता का स्थापन नैतिकता में रहा है। तबम धारण धीर ऊँचे विचार हमने दूर छोड़े जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि धारणत योजनाओं पर बहुत धारणत बात देने के कारण हमारी यह दृष्टि बदली है धारणत यूरोपीय धारण-धीरता के कारण।

देश धीर धारण के नेता स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उपस्थित नैतिक धारणत धारणतों की पूर्ति में इतने बलविलत हो गए कि सामाजिक धीर नैतिक स्तर ऊँचा करने की धीर न उम्हें समय मिला धीर न धारणत इतना धारणत ही रहा।

श्री अयप्रकाशानारायण के शब्दों में 'जीवन-स्तर को उन्नत करने की रास्ता याचना ने हमें इतना धमिभूत कर लिया कि हम नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति की मूस गए। ससृति के नाम से धाम जिस कला मगीत और मृत्यु को प्रमाणता दी या रही है वह नैतिक बरातल को ढका करने के बजाय धायर मिरा ही रही है। ऐसे समय धाचार्य श्री तुमसी का प्रगुवत-मान्दोसन प्राणा की एक नई किरण के रूप में हमारे सामने प्राया है।

धाचार्य श्री तुमसी के प्रगुवत-मान्दोसन का किमी सम्प्रशय या धर्म विलेख से सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध तो मानव-धर्म मे है। यह मान्दोसन जहां एक नागरिक के ब्यक्तिगत जीवन को ढंका करता है वहां परिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र का बहुत ढंके बरातल पर मे जाने जाता है।

इस प्रगुवत-मान्दोसन का मध्य जाति बर्लु देग और मम्प्रदाय का मेर मान न रखते हुए मनुष्य मान को धात्म-संयम की घोर प्रकृत करना है। धाचार्य श्री तुमसी के शब्दों में 'प्रगुवत-मान्दोसन जीवन की धाम्यात्मिक और नैतिक सिचाई के लिए योजना है। इसका लक्ष्य सामाजिक और राजनैतिक उन्नति से बहुत अधिक ब्यापक है। यह धाम्यात्मिक उन्नति है परन्तु इनकी यह धाम्यात्मिक उन्नति ससार से बेराम्य नहीं सिचाती। यह तो सर्वतोमुखी उन्नति है। इसमें अपना हित व दूसरों का हित भी सम्मिलित है। विभिन्न प्रगुपल देष के मिन-मिन क्षेत्रों में कार्य करने वाले नागरिकों के धाम्यिक और नैतिक जीवन को ही ढंका नहीं करते वे अपने धार्मीकिक कार्य को भी ऐसे ब्याबहारिक और उपयोगी निरंय देते हैं जिनमे समस्त राष्ट्र का न केवल नैतिक बरातल ढंका होता है, किन्तु वे नागरिक को समस्त देग के लिए अधिक उपयोगी अधिक समर्थ और अधिक प्रासबात् बना देते हैं। एक माभारण्य नागरिक के लिए निरपराध प्राणी की संकसुर्बक हिंसा न करने धात्महत्या न करने मद्य पान न करने ब्रह्मचारी जीवन ब्यतीत करने उपवास करने और मांम न काने धारिक के घत जहां ब्यक्तिगत उन्नति के कारक हैं वहां किमी को प्रस्युप न मानने, किमी भी हिंसात्मक दस में सम्मिलित न होने और धमीनस्य कमचारी या मजदूर ने चाही नाम न सेने ब्यापार में मूखतोम न करने नाममात्री न करने

मिथ्या विज्ञापन न करने और स्वयं गोम या वृषभय कोई समाचार या टिप्पणी प्रकाशित न करने और बाजारी या बिना टिकट रेलवाजा न करने और किसी व्यापारिक बीज के मिश्रण न करने आदि के बीसियों वृत्त सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से धनदायक कृति को कम करने में सहायक होंगे। सपार्ड, विवाह प्रबंध में कोई ठहराव न करने बहुरंग आदि के प्रदर्शन में भाग न लेने जुधा घण्टा छोड़ने एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह न करने व भीमनवार न करने आदि के वृत्त हमारे समाज को बहुत ढंका बना देंगे। धार के बोधित समाज बाद की स्वायत्ता के लिए कुछ वृत्त बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रतिवर्ष सौ वज से अधिक कपडा न लेने सरकारी कर की बोरी न करने राज्य द्वारा मियत बरों से अधिक व्याज न लेने और संकृष्टीत पुत्री के लीर पर एक मास से अधिक दान न रखने के वृत्त—इसी तरह के वृत्त हैं। इन संस्थित वृत्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि धनुष्य-आन्दोलन कितना व्यापक व कितना उपयोगी है और यह के सजी वरों और बलियों को बिना तरह प्रभावित कर सकता है।

धार के मौखिककारी युग में जब हमारा देश उन्नति की दौड़ में अन्य देशों का मुकाबला करना चाहता है यह आवश्यक है कि हम सर्वांगीण उन्नति के आधारमूठ मूलमंत्र नैतिक और सामाजिक बरिष की ज़रूरत नहीं करें। इसकी ज़रूरत करके हम वा मौखिक उन्नति करेंगे वह साबनी कमजोर और धरदासी होती। स्वयं बरिष और उन्नत विचार से मुरन नापरिक ही किसी देश को स्वयं और बनवाना बनात है। धनुष्य-आन्दोलन के विभिन्न धर्म इसी विद्या में परम महत्त्वक विद्य होंगे। सामाजिक और नैतिक बैठना के बिना राष्ट्रीय आत्मा गण्डित ही रह जायगी। उन्नत प्रकृत नग की उन्नति के लिए धनुष्य परम आवश्यक है। डॉ० राजाहमण्डू क मन्त्री में 'धार हमारा जीवन्तमा सौवा हुआ है धारम-वृत्त का धारम है। यह धारमोपन हमें धारम बल की धोर में आणा।

नव निर्माण और नैतिकता

—श्री रामनाथ वर्मा

जनसम्पर्क अधिपतारी दिवसी प्रज्ञासप्त

स्वतन्त्र भारत के नव निर्माण में वे सभी सामान प्रयोग में लाए जा रहे हैं जो वर्तमान वैज्ञानिक युग में हमें प्राप्त हैं। देश भर में समृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार छोटी-बड़ी योजनाएँ चल रही हैं। कुल मिलाकर हम नैतिक प्रगति की ओर जा रहे हैं। यह कहा जा सकता है कि अगर कोई सामाजिक विपत्ति न आ पड़े तो दस वर्ष में देश की काया पसट जाएगी। ज़िदा स्वास्थ्य पानी, बिजली मकान जीविका इत्यादि जीवन की सभी मुख्य सुविधाएँ किसी न किसी ढंग में सब नागरिकों को मिल जायेंगी। यह पाकर भी क्या हमें वह बहुमूल्य वस्तु प्राप्त हो सकेगी जिसे हम या आत्मा का सम्योच कहते हैं।

अगर से देखने में ऐसा मासूम होता है कि यह प्रश्न कोई दार्शनिक प्रश्न है और इसका सम्बन्ध धर्म या अध्यात्मवाद से है। वास्तव में ऐसा नहीं है। आमतौर से हम धर्म और दर्शन को अपने प्रतिबिम्ब के जीवन में कुछ अलग मानते हैं। अगर हमारी यह धारणा ठीक माननी जाए तो जो प्रश्न मैंने ऊपर उठवाया है उनका धर्म तथा अध्यात्मवाद से सम्बन्ध नहीं रहता और यदि यह माना जाए जैसा कि मेरी राय में मानना चाहिए कि धर्म और दर्शन हमारे प्रतिबिम्ब के जीवन प्रवाह में कोई अलग वस्तु नहीं है तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि यह प्रश्न नि सन्देह हमारे धर्म से सम्बन्धित है।

किन्तु धर्म का अर्थ मजहब या सम्प्रदाय नहीं। हमें धर्म का मौलिक अर्थ समझना होगा और वह है—ईर्ष्यापरायणता। कर्म करने के लिए कुछ व्यवस्था

धीर मर्यादा प्राथमिक है। यही व्यवस्था धीर मर्यादा हर समाज का आधार होती है। सब तो यह है कि स्वयं मानव समाज का यही आधार है। इस व्यवस्था धीर मर्यादा के पीछे जो तरह की शक्ति होती है। एक राज्य का नियम धीर विधान धीर मर्यादा का ही प्रतिबिम्ब है। धीर मर्यादा पर भी धीर विधान ही प्रभाव पड़ता है। धीर मर्यादा के अनुसूचक बनाया जाता है धीर नैतिकता पर भी धीर विधान ही प्रभाव पड़ता है। धीर मर्यादा के पीछे जो तरह की शक्ति होती है। धीर मर्यादा पर भी धीर विधान ही प्रभाव पड़ता है। धीर मर्यादा के पीछे जो तरह की शक्ति होती है। धीर मर्यादा पर भी धीर विधान ही प्रभाव पड़ता है।

क्या संसार में कभी कोई ऐसा समय या संकट था जब मानव समाज में सत्य अहिंसा प्रेम सेवा त्याग धीर तपस्या का मूल्य न रहे ? यह तो हो सकता है धीर हो रहा है कि मानवता के इन सिद्धान्तों का मूल्य कुछ लोगों की दृष्टि में घटता-बढ़ता रहे। यह भी हाँ मकता है धीर हो रहा है कि बहूतों के जीवन में इन सिद्धान्तों का या नैतिकता का प्रभाव हो जाए, किन्तु इनका मूल्य कम नहीं हो सकता। क्योंकि रोचनी तो सदा रोचनी ही रहेगी। वह धन्येय नहीं बन सकती। रोचनी का प्रभाव ही तो धन्येय होता है। यह प्रश्न यह है कि नैतिकता का हमारे प्रतिदिन के जीवन से क्या सम्बन्ध है ? इसका उत्तर बहुत ही स्पष्ट है। हमारे जीवन धीर काय वा कोई भी श्रेय हो बल, दण्ड, बाजार, केत कारनामा इत्यादि हर जगह हमसे घाटा भी जाती है कि हम किसी न किसी प्रकार नियमबद्ध होकर मुचाब बन से काम करें। ईमानदारी बरनें। किसी को जानबूझकर हानि न पहुँचावें। स्वार्थ सिद्धि न करें बल्कि दूसरों की सहायता धीर सेवा करें। हमी को मददिचार धीर मर्यादा बहूत है धीर यही नैतिकता है। मारे समाज या राष्ट्र के प्रयत्न में नैतिकता की आवश्यकता धीर भी बढ़ जाती है। क्योंकि काम वा श्रेय जितना बड़ा होगा उन्ही के अनुसार काम करने वाले में सामर्थ्य भी चाहिए धीर उत्तमी ही अधिक शक्तिशालता भी चाहिए। बड़े श्रेय में काम करने वाला मूल करे या मर्यादा रंग बने तो उत्तमा परिणाम उस श्रेय से सम्बन्धित सभी के लिए लिए बुरा होता है। ममी तो यह बात है कि जिनके हाथों में समाज वा मनुष्य

होता है, उन्हें हम नीतिकला की कसौटी पर सख्ती से परखते हैं।

परन्तु हमें इस मूल में नहीं रहना चाहिए कि जहाँ राजसत्ता या जन सम्पन्नता हो केवल वहीं नीतिकला की प्रावश्यकता है या कि नीतिकला केवल साधु-सत्तों की सम्पत्ति है और जनसाधारण को नीतिकला का पालन करने की जरूरत नहीं। राजसत्ता समाज के हित और कल्याण के लिए होती है और जन-शक्ति भी है तो इसीलिए मगर सब जानते हैं कि ये दोनों शक्तियाँ मनुष्य को नीतिकला से हटाने में सहायक होती हैं। इसमें किसी का कोई दोष नहीं। इन शक्तियों का स्वभाव ही ऐसा है किन्तु हम सीमाध्य से मोक्ष-प्राप्तक राज्य और समाज में रह रहे हैं जहाँ जनता को जनार्पण माना गया है। जनता नाम है देश के नागरिकों के समूह का। तो ऐसे समाज में प्रत्येक नागरिक पर यह उपरबलित भा जाता है कि वह स्वयं नीतिकला का पालन करे क्योंकि इसी हालत में वह राजकाज चलाने वालों को ठीक मार्ग पर रखने में सहायक कर सकता है।

राजनीति इस लेख का विषय नहीं किन्तु वर्तमान युग में और वह भी मोक्ष-प्राप्तक समाज में देश और समाज की जर्जर कण्ठे समय राजनीति को न घूना सम्भव नहीं। यहरी दृष्टि से देखिए तो राजनीति भी हमारे जीवन का एक प्रावश्यक घन बन गई है। मतरान नागरिकता का अधिकार है और मोक्ष-प्राप्त में मर ही राजनीतिक शक्ति का आधार है। इसका यह अर्थ हुआ कि मतराताओं में जो कुछ और अवगुण होंगे प्रायः वही कुछ और अवगुण उनके प्रतिनिधियों में भी होंगे। तो यह प्रावश्यक है मतराताओं यानी नागरिकों में नीतिकला का संचार हो।

नीतिकला का प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध समझने के लिए रोजमर्रा की समस्याओं पर दृष्टि डाल लेना काफी है। आज हम यह आम शिकायत सुनते हैं कि सरकारी नौकराटी महिन्त और तेजी से काम नहीं करते। सरकारी महकमों में रिस्वत चलती है। व्यापारी वर्ग इमानदारी नहीं करता। जाने-बिने की वस्तुओं में मिमाबट होती है। बचाइयाँ तक कुछ नहीं मिलतीं। मजदूर वर्ष अपना काम पूरा नहीं करता। कारखानेदार मजदूरों का अधिकार दबाते हैं

धीरे उनके हित का पूरा ध्यान नहीं रखते। विद्याविधियों और धर्मशास्त्रों में सिद्धान्त का सम्बन्ध नहीं रखा है। अनुशासन सब जगह कमजोर हो रहा है इत्यादि। इन्हीं सब बुराइयों के फलस्वरूप यह भी धिक्कापठ कम पढ़ रही है कि एकता और राष्ट्रीयता की भावना मजबूत पड़ती जा रही है। इन सब विषयगतों और बुराइयों की जड़ में केवल एक ही बात है वह है नैतिकता की कमी या अभाव।

आहे वैयक्तिक चरित्र या आगे सामाजिक या राष्ट्रीय चरित्र हो इसका आधार कबल नैतिकता है। सब पूर्वज्य तो धर्म किसी सम्प्रदाय का नाम नहीं। धर्म ऐसी कर्मव्यवस्था का नाम है जो नैतिकता पर आधारित हो। अगर हम सब धार्मिक-अधार्मिक अथवा धर्मता काम नियमानुसार, सगत और परिष्कृत से करें और परस्पर व्यवहार में सिद्धान्त बरतें ईमानदारी से काम लें और समाज की मर्यादा का पालन करें तो यही हमारी नैतिकता होगी।

मानव समाज में धर्म को सम्प्रदाय का रूप दे दिया है। इसलिए संसार में विभिन्न धर्म और मत मतांतर हैं। सबके धर्मों का एकिकार इच्छित हो गया है जो एक दूसरे से टकराता है। लेकिन नैतिकता सब धर्मों की जान है। इसमें किसी धर्म या सम्प्रदाय का झुंझना कोई टकराव नहीं। इसमें एक राष्ट्र का झुंझना राष्ट्र से भी टकराव नहीं।

नैतिकता का अभाव जैसे दूर हो और समाज के विभिन्न वर्गों में नैतिकता का कैंठे संचार हो इन प्रत्येक का उत्तर प्राप्त नहीं। हम धर्मकी समस्याओं का जितनी सरलता से निरीक्षण कर लेते हैं उतनी सुखमता से उनका उपाय नहीं कर पाते। कारण यह है कि हमारे सोचन और बोलन की क्षमता जितनी तीव्र है तब बोलन की क्षमता उतनी तीव्र नहीं। हमारे बचन और कर्म में बड़ा अंतर है। इस अंतर को बंद करने का यत्न करना नैतिकता को शक्ति देता है।

नैतिकता एकी बीज है जिसका प्रचार कबल से नहीं अनुकरणीय से होना चाहिए। हमारे घरों में बड़ी महामुमान नैतिकता का प्रचार करने के पात्र हैं और जहाँ के घरों का अंतर भी हो सकता है जिनके जीवन में नैतिकता की अन्तर्भाव है। सभी राष्ट्र और मनु के जीवन में नैतिकता दृढ़-दृढ़कर गयी होती

है। इसीलिए उनकी बात का अधिक मूल्य होता है।

अणुव्रत-अन्वोलन का नेतृत्व और सञ्चासन करने वाले मुनिजनों में से कुछ के सम्पर्क में मैं प्राया हूँ। उनके स्वामय भीवन से भया भी होती है और प्रेरणा भी मिलती है। मैं उनका अनुकरण करने में अपन आपको असमर्थ पाता हूँ। दायब हमारे समाज में बल्कि सारे मानव समाज में मेरे जैसे असमर्थ लोग ही अधिक हैं किन्तु मेरा विश्वास है कि अणुव्रत से हमें नैतिकता का जो सन्देश मिलता है उसे यथायोग्य ग्रहण करना और अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन के जीवन में घटाने का यत्न करना असम्भव या बहुत कठिन नहीं।

हम घासमान तक उठने की शक्ति नहीं रखते तो न सही इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम गढ़ से निकलकर मूमि के स्तर तक पहुँचने का यत्न भी न करें। हमारे राष्ट्र का नव निर्माण हमसे दूसरी रचनात्मक योजनाओं के माध्यम एक ऐसी योजना की भी माँग कर रहा है जिससे हम सबमें और हमारे समाज में नैतिकता का संचार हो करना हम एना समाज बना लगे जिनमें समृद्धि तो होगी सन्नाप और शान्ति नहीं।

भूवान धीर घण्टुद्रस

—वी घरापाल धर्म

सम्पादक, जीवन साहित्य

पीठा में कहा गया है कि इस संसार में सब-सब धर्म की ज्ञानि हीनी है, कोई संकट आता है तब-तब कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होता है धीर धर्म विरोधी तत्त्वों को दूर करके इस जग की संकट से मुक्त कर देता है। बुद्ध महाधीर, ईसा मुहम्मद धारि सब इसी कथन की पूर्ण्टि करते हैं धीर मांवी का उगाहरण तो हम लोगों के सामने एकत्रम आता है।

मनुष्य के धर्मर दो प्रकार की प्रकृतियां होती हैं—सद् धीर घसद्। सद् कृतियों के द्वारा वह लोक हितकारी कार्य करता है, घसद् के द्वारा लोक-विपातक। जब सद्कृतियां अधिक प्रकृतियांमिनी हो जाती हैं तो संसार नमा रिनाई देने ममता है लेकिन जब घसद्कृतियां धीर पकड़ जाती हैं तो यह दुनिया नकं बन पडती है।

मने बुरे का यह जक धनारि काम से बना आया है धीर धामे भी बनता रहेगा।

माख धाध्यात्मिक देता रहा है। एक समय का जब वह घपने दोषों का बर्षन करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता था। वह बूझों को दोषी, टहरने के स्थान पर कहता था—

बरा जो देवन में जाता

बरा न शीला बीव।

जो दिल लोभा प्रापता,

मुम्ता बुरा न कोय ॥

अथवा

'जो सम कीत कुटिल लम कामी ?

लेकिन परिणामी सम्भ्रता का प्रताप कहिये या युग के विपरीत प्रभाव की महिमा प्राय मानव की दृष्टि बाहिर्मुखी हो गई है। उसे दूसरों की प्राण का तिल ताड़ निश्चार्द देता है और अपने बड़े-से बड़े शोष को देखने का तो उसे अवकाश ही नहीं है। भौतिकता में वह इतना लिप्त हो गया है कि सम्पूर्णतः सम्भ्रजात और सम्पूर्ण चरित्र को एकवचन भूल गया है। वह महंकार, महत्वाकांक्षा की पूर्ति तथा प्रभाव के विस्तार के लिए दिन-भर मटकता है पर क्या एक भी आदमी अपनी छाती पर हाथ रख कर कह सकता है कि उसे अपनी शान्ति और शान्ता सुख मिलता है ?

राष्ट्रों की महत्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप हम को महाबुद्ध और उनके हाथ मीसल किम्बद देख चुके हैं। प्राय फिर तीसरे बुद्ध के बादम ख्रिस्तिय पर संभ्रयते निश्चार्द दे रहे हैं। आत्मिक दृष्टि से खोजता होकर प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुखा और विस्तार के लिए भयंकर से भयंकर भस्त्रों का आधिष्कार और निर्माण कर रहा है। अणुबम और हाईबोजन बम तोपें पोता बास्त्र यानी आधुनिक बल क जितने सामन संभव हो सकते हैं राष्ट्र खीज-खीज कर निकाल रहे हैं। वे हिंसा के हाथ शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। अणुबम के कलस्वरूप हिंसाधिया में हजारों निरीह व्यक्तियों का हनन होता है तो क्या उन्हें इस बात का संशोप है कि उनके एक ही बम से बुनिया वहन उठी।

प्राय हम सब एक संकट काल से जुजर रहे हैं। कहते हैं, यह बुनिया भलाई पर टिकी है। और प्राय बुनिया का भस्त्रिलव मीजुब है तो मानना चाहिए कि भलाई अभी तक नाम शोष नहीं हुई है। पर प्राय तो आर्यों और हिंसा का बीजबामा दिनाई देता है, मनुष्य और समाज का दूषित रूप दृष्टियोजर होता

है वह सब इस बात का चोटक है कि मानव-समाज और राष्ट्र की असद्वृत्तियाँ अचिरक बसबती हो उठी हैं।

दुनिया पर घाये छकट को दूर करने के लिए अनेक आन्तिवासी प्रयत्नशील हैं। आज से तीन वर्ष पूर्व बिस्व के आन्तिवायियों का आन्तिविकेसन और सेवा ग्राम में सम्मेलन हुआ था। बहुत से देशों के आन्तिवासी व्यक्तियों ने उसमें भाग लिया था।

अहिंसक आन्ति के लिए हमारे दो स्वर और उठे हैं। एक है 'भूदान यज्ञ' जिसके प्रवर्तक आचार्य किनोबा भावे हैं। आज से लगभग दो वर्ष पूर्व उन्होंने इस आन्दोलन का मुहपाठ किया था। इन आन्दोलन के द्वारा वह भीखूरा आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को दूर करके उन मूर्खों को स्थापित करना चाहते हैं, जिनसे यह बिस्व एक कृदुम्ब की भाँति जीवन-यापन करे। एक व्यक्ति का मुक्त-बुद्ध दूसरे व्यक्ति का मुक्त-बुद्ध बने कोई किसी का घोसला न करे, सबको अपने विकास का समान अवसर और समान बुद्धिपायें मिलें और समष्टि के हित में व्यक्ति के हित अन्निहित हों। संक्षेप में किनोबाजी इस अहिंसक आन्ति के द्वारा गांधीजी के 'समसम्य' के स्वप्न को मूर्तकर देना चाहते हैं। वे पैदा न भूम-भूम नर भूमि एकत्र कर रहे हैं। अब तक लगभग १० हजार बीघा पैदा न भूम भुके हैं और २२ लाख एकड़ भूमि इन्हें मिल चुकी है। पर उनका कहना है कि भूमि एकत्र कर लेने मात्र से नरे अक्षय्य की पूर्ति नहीं हो जाती। मैं समाज का हाँबा ही बरत देना चाहता हूँ। वह यह भी कहते हैं कि स्थायी परि वर्तन तक होगा जब मानव के अन्दर आर्थिक बल उत्पन्न होगा। इसीसे वह प्रत्येक व्यक्ति से आग्रह करते हैं, अपने दोषों को देखो उन्हें दूर करने का प्रयत्न करो और इस प्रकार मुक्त बनकर समाज और राष्ट्र की सेवा में जुट जाओ।

भूदान यज्ञ की भूमिका वीं देखने में आर्थिक सपटी है, लेकिन गहराई से देखें तो पता चलेगा कि वह जीवन के प्रत्येक संघ तक व्याप्य है।

दूसरा स्वर है 'अशुद्ध' का जिसे आचार्य तुमशीयली ने उठा दिया है। बिनाग के भूदान यज्ञ की भाँति यद्यपि अशुद्ध-आन्दोलन अभी देजम्पानी नहीं

बना है। उषावि उसकी बड़ी-बड़ी सम्भावनाएं हैं। उसकी भूमिका विद्युत् प्राथमिक है। वह जीवन की पावनता पर जोर देता है। उसकी दृष्टि में सारी बुराइयों की बड़ मानव का धपना घड़कार, सिप्ता महत्वाकांक्षा पारस्परिक भेद भाव, ईव्या द्वेष घादि हैं। अतः उनका प्रयत्न है कि मानव अपने दोषों को देखे और स्वेच्छ्यापूर्वक उन्हें दूर करे। उसने जिस संघ की स्थापना की है उसका द्वार मानव-मात्र के लिए खोल दिया है। जो जीवन-सुख के नियमों का पालन करता है, वह उसका सदस्य बन सकता है। भले ही वह किसी भी जाति धरवा धर्म का अनुगामी हो। दूसरे वह किसी को भी दर-बार छीन की प्रेरणा नहीं करता। वह कहता है कि तुम जहाँ भी हा धपना को दोष मुक्त बनाने का प्रयत्न करो। जो बचा तुम्हारे हाथ में है, उसे बुराइयों से बचाओ। अणुवती संघ के प्रवर्तक प्राचार्य तुमसी तथा उनके अनुयायी वेदा के विभिन्न भागों में परिभ्रमण करके इस भाग्योत्सव को व्यापक बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अणुवती संघ के चार महान् उद्देश्य हैं —

- १—जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव-मात्र को संसाधार की ओर आकृष्ट करना।
- २—मनुष्यों को अहिंसा अथ धर्म्य बहुधर्म और अपरिग्रह घादि तत्त्वों की उपासना का बतौ बनाना।
- ३—प्राथमिकता के प्रचार द्वारा सुहृद-जीवन के नतिक स्तर को ऊँचा करना।
- ४—अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व-भैत्री व विश्व-शांति का प्रसार करना।

उद्देश्य शुभ हैं। पर धारयकता इस बात की है कि उनका पालन विवेकपूर्वक किया जाए। हम जानते हैं कि प्रत्येक धर्म के मूल सिद्धान्त धर्म्य होते हैं, सेद्धि कात्मान्तर में लोग उनकी त्रिष्ट की भूल जाते हैं और कड़ि के रूप में उनका पालन करने मयते हैं। वे शरीर को जकड़ मते हैं, धारमा छूट जाती है। इसलिये हम कहते हैं कि उक्त उद्देश्यों की पूर्ति विवेकपूर्ण होती रहनी चाहिए।

हमें है कि इन दोनों धान्वातनों की भूमिका पूर्वक हल हुए भी बानों की

मूल भावनाएं एक हैं। इससे भी अधिक धाम्ब की बात यह है कि दोनों के प्रवर्तक ही ठीके ठीके महापुरुष हैं। इनमें जीवन की सावनी है विचारों की उज्ज्वला है धीर दोनों ही कठोर जीवन के सम्राट्टी हैं।

हमें विश्वास है कि इन दोनों धाम्बोत्तमों का स्वर दिन-प्रतिदिन प्रचर होना जाएगा धीर उनके हाथ लौकहित होगा।



आत्म शुद्धि का मान्दोलन

—सा० धामदाम

महावीर दिल्ली नगर निगम

मनुष्यों के मन और आत्मा की शुद्धि करने वाले अखण्ड-मान्दोलन के प्रपञ्च व्याख्याकार मुनि श्री मयराजजी धाम हमारे बीच पकारे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

भारतवर्ष सदा से ही सन्तों व महात्माओं की भूमि रहा है और यहाँ पर भौतिक मूर्खों की अपेक्षा आध्यात्मिक मूर्खों का महत्त्व अधिक रहा है। अन्धेह और अविश्वास के इस युग में जहाँ भौतिक सुविधाओं के लिए संसार प्राप्त बन रहा है वहाँ भारतवर्ष धाम भी धान्ति और मनी का रास्ता दिखाने वाला प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हो रहा है। अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति जो युगों से हमें विरासत में मिल रही है के कारण ही यह स्थान बन रहा है।

सुभाग्य की बात यह है कि दूसरे विश्व-युद्ध के बाद हमारा भौतिक स्तर मनी तरह से नीचे गिराया जा रहा है। अर्थ-प्राप्ति की होड़ ने व्यापार-वन्दों में अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है। भौतिकवाद को आवश्यकता से अधिक प्रथम मिला है। किन्तु हमें यह याद रखना होगा कि भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति हमारे जीवन का ध्येय नहीं है। बीसव से आठ्मिठ्म धान्ति कभी नहीं मिल सकती है। वह सभी मिल सकती है जबकि हमारी आत्मा में यह सन्तोष हो जायगा कि हमने हमारे वर्तमान का प्राप्त अन्धी तरह से कर लिया है।

उद्दिष्ट महात्मा गांधी ने हमें यह सिखाया कि यदि तुम धास्वत सुख चाहते हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि साध्य के साथ साधन भी युद्ध होना चाहिए। ऐसा ही अन्धेध धाम हमें आचार्य तुलसी, आचार्य बिनोबा और

मुनि भी मगराजजी जैसे सन्तों के उपदेश में मिल रहा है जो कि हमारे सत्त्वान के लिए अत्यन्त अपेक्षित है। सच्ची महानता के लिए हृदय की पवित्रता अति आवश्यक है। मनुष्य के हृदय में सुनी हुई पशु-वृत्ति को दूर करना ही हृदय की पवित्रता का कार्य है। इस गुरी वृत्ति के साथ मत्त मुँह करने की आवश्यकता है।

हमारे प्रशासन में भी बहुत सारी बुराइयाँ घुस गई हैं। प्रशासन भी हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक अंग है अतः हमारा यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम शुद्धता और कार्य-क्षमता को प्रशासन में किस प्रकार ला सकें।

मुझे इस बात में ठनक भी सन्देह नहीं है कि आज मुनि भी मगराजजी के प्रवचन से हमें बहुत लाभ मिलेगा और हमारे दिल और दिमाग को संयमित करने के लिए आवश्यक बल और हिम्मत का संकलन प्राप्त होगा। साथ ही साथ सरय की साधना के वास्तविक अर्थ में हम किस प्रकार हमारे बन्धुओं की सेवा कर सकें इसके लिए प्रेरणा भी मिलेगी।



नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

— श्री सरस विद्योगो

जनसम्पर्क अधिकारी अजमेर

आज के विचलित पृथ्वीवारी व सामन्तवारी युग में नैतिक मूल्यों की उपासना नहीं की जा सकती। महानता का युग समाप्त हो चुका है। आज का युग मनु-शक्ति का है। अणु में ही बिजु का दर्शन करना और अणु के गायटन में ही शक्ति का उद्भव देखना युग का सत्य है। सामान्य जन की इकाई में जो सरप राजनीतिक शक्तता है वैज्ञानिक अथवा प्रयोगशाला में उमी सरप का अनुसन्धान करता है। ऐसे युग में अनिर्वास ही या कि नैतिक दृष्टि से कोई विद्वान् अणुघटकों का रहस्य उद्घाटित करता। यही कार्य आचार्य श्री तुमकी कर रहे हैं। मेरा उनसे मिलने का सौभाग्य था और अजमेर दोनों ही स्वर्णों पर हुआ था और मैंने उनके दर्शन के महत्त्व को उमी समय समझ लिया था जब मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ। आज हिमात्मक महान् है पर वह महता अणु-शक्ति पर ही अवलम्बित है जो उसे आरों ओर से आच्छादित किया हुए है। रहीम में कहा है—'मार घरे संमार को तहू बहानन दोष'। अणु नाम की शक्ति क्या कम है? दोष क्या है? अणु-शक्ति ही तो है जो मछार को साधे हुए है। बुद्धिमान् कहते हैं—जब सब कुछ जा रहा हो तब अणु का ही सहण करना चाहिए। स्यामात्मक कहता है—साधक नहीं है जो साम्य का साधे। असाध्य को साधने वाले के कार्य का दुस्साहम ही कहा जायेगा। उससे भी अधिक बुद्धिवाज्वक स्थिति सामान्य लोचमानस की है। वह आदम के गीरी तिलक तक नहीं पहुँच सकता पर दीस-तत्त्व की अविद्यता के कारण उन्हें छोर भी नहीं सकता। समाज में सभी धर्म, कला संस्कृति और इतिहास का रसाक

वही बर्न है जो भौतिक संघर्षों में पित्त कर भी उपरोक्त मूर्खों की रखा करता रहता है। धात्र के मुँह में इन मूर्खों की रखा करना कितना कठिन है इसे वही बयान सकते हैं जिन्होंने जीवन में कभी महान् धारणों के स्वप्न देखे हैं। धात्र का युग बर्न-वर्ष का है। स्वामी-सेवक पति-पत्नी पुत्र-पुत्र्य धारिणी बर्नों में जहाँ बहुते कार्ब बड़ा स्नेह प्रीति-विरासत ध बलता या धात्र निरन्तर अर्ब की मुमिका है। परिणामतः धारों धोर धारिणियों की मांग बढ़ती जा रही है धोर कर्तव्यों के प्रति ध्यात नहीं-जा है। पुत्र्य के हटने से सामाजिक मूर्खों में उन्नत-नुपत उत्पन्न हो गई है धोर उन्नत प्रभाव वैदिक मूर्खों पर भी पडा है। परिवार में जिन्होंने सदैव धाने को 'पुत्र्य की धामा' कहा है, वह मुँह खोलने लगी है। समानाधिकार की माँग उठ रही है जबकि सत्यता यह है कि स्त्री-पुत्र्य में समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। दोनों का श्रेय धानम धान्य है। दोनों की पूर्णता धाने-धाने धर्षों में पूर्ण बनने में है। मरती पुत्र्य बन लक्ष्मी है धोर न पुत्र्य स्त्री। दोनों में से किसी एक का धानती सीमाओं का धानिप्रमाण करके दूसरा रूप बहण करना उन्नत धर्षों के लिए धानिधर होना। धात्र धरी हो रहा है। स्विया पुत्र्य बन रही है धोर पुत्र्य स्विया। जब धारिणारिक स्थिति यह हो तो राष्ट्र का निर्माण कैसे हो सकता है ?

धुध धोर सिध्म के धाम्बनों को सीखिये। यद्यपि यह बहा जाता है—बिन धुध होव न ज्ञान पर हममें से बितने ऐसे हैं जो इस सत्य को समझते हैं ? धात्र जो धिजा दी जाती है वह ध्यागारिक पद्धति पर है। धरिस्थानतः धोरों धाने धर्ष कर भी महान् धाम्बन धोर धाम्बिता धरीनि एक भी धिधानीक स्वधित नहीं कर सके हैं धोर न टंगोर, धुरी प्रेरकधन्व, प्रसार न धिराना महध धिध्व धिध्वि उन्नत कर सके हैं। धुध-धिध्व की धरधरता का धिधानी निर्बाह धामाजिक जीवन में कम पड़ता जा रहा है धर्षों के धनुष में इन धरधे हैं ज्ञान के धंध में धिरधता धानी जा रही है। धात्र का ज्ञान धिधानी ज्ञान है। उनमें धनुषध की धिरधता है इधीलिए धात्र धा पडा धिधानी धानध एक भी धरधन्व, धनेदो धारिधनि धेधध्यात धुध धरधी महान् धिधानियों के धर को नहीं जा लक्ष्मी है। धरि ऐसी महधधधिया धात्र उन्नत करना धारत

हैं तो आपको मुद्द-विषय परम्परा को पृथक्कृत करना होगा। यदि आप इस मूल्य को समझना चाहें तो कृत्रिम रबीन्द्र के भावितनिकेसन में जायें। यही वस्तु आपको रामकृष्ण परमहंस व योयीराज शरबिन्द के भाषणों में मिलेगी। गोपीबायी बुकबुलों में क्या हम परम्परा की प्रवृत्ति है? यही विमुक्त भारतीय पद्धति है जिसे हम पुनः प्रारम्भ करना होगा। जब तक हम ऐसा न कर सकेंगे हम मनुष्य ऐसे मेधावी श्राद्धग्यों को न पा सकेंगे जिनके सम्मुख बभुसा के बड़े-बड़े सिंहासन झुकते थे।

स्वामी-सेवक के सम्बन्ध की सीढ़ि। व महामानव कहाँ गए, जो एक बार भाषिक का नामक सा सेने पर हमारा के लिए उनके बन जाते थे। आज का मानव कम और निरन्तर कर्म तथा उनके तात्कालिक परिणामों में विश्वास करता है। परिणामतः आज वह मन्वन्वत् हो गया है और उसके सामने जीवन-विश्वास का एक ही सिंहास है। निरन्तर धार में वृद्धि और उसके अनुकूल व्यय के तलपट में लक्ष्मण। विषमिन्त पूंजीवादी मन्वन्वता में जिनका भग्न भग्न हुआ है उसी भाषा में मनु-मनु मानव का रूप हमारे सामने है जो निरन्तर सन्वर्ध करता है और पैर की विषम गवाकाशों में मरता रहता है। मनुष्य स स्वामित्व उठ गया है और राज्य न स्वामित्व से लिया है। यह केन्द्रीयकरण की स्थिति जब तक और कम जसभी इस तो समाजवादी जायें परन्तु मैं अपने व्यक्तिवादी जीवन में यह जाना है कि मनुष्य की नेक-नियत पर जिनका एक किया जाता है वह उतना ही पतित हो जाता है। धरु मनुष्य को ऊपर उठाना है तो उसका विश्वास करना होगा। समान से ही समान की उत्पत्ति है। पुण्ड्रा प्रथम उदरम नहीं कर सकनी और प्रेम में पुण्ड्रा नहीं हो सकती। दोनों ही विरोधी तत्व हैं। समाज-व्यवस्था सहकारी पद्धति पर धारित है। जहाँ का विरोध पुण्ड्रावाद व व्यक्तिवाद की जड़ें हैं वहाँ समाजवाद कैसे पनप सकता है? जो मनुष्य सबको सा मया है, वह धारने की भी सा बायेगा। हमीमिने ममार के सभी वीरुदिक विचारकों ने जैसे प्रवृत्ति विश्वास तथा समाजवादी प्रेम धारिक के उदात्त पक्ष विद्ये हैं जो मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण मूल्यों का निर्माण करने में सहायक हैं। आज की मुद्द-विषय परम्परा में निर्वाह की कमी

वहाँ संवीर के धनुष में तानसेन को देने में असमर्थ रही है, वहाँ काश्यप के लोग में तुलसी-सा महात्मा कवि भी नहीं द सकी है।

ऐसे ही संस्कृतिकाल में भारतीय-दर्शन परम्परा में आचार्य श्री तुलसी के रूप में एक ऐसे सन्त को हमारे बीच में भेजा है जो सत्य की परम्परा में विश्वास रखता है। पृथ्वी सरय से तपी हुई है वह वैदिक नस्लता है। जीवन धीरे धीरे इसी हिमालय से निकली हुई ज्ञान की संसार्य है। वह प्रमाणा है जो इस विवेकी में स्नान नहीं कर सका है। पृथ्वी सरय से सपी है इसमें सत्य तो माध्यम हुआ पर क्या कौन है? यह प्रश्न गौण नहीं है क्योंकि आत्मवादी वेद में कर्म के ऊपर कर्ता की मायता शर्क रही है। वैदिक ऋषियों ने इसीलिए सत्य से शक्ति का सम्बन्ध विद्या और शक्ति की प्रतिष्ठा यहाँ में मानी। 'महापदो ब्राह्मणं पुत्रि' धर्मान् ब्राह्मण नहीं है जो महापता का अनुष्ठान है और पवित्र है। यह विमुक्त वैदिक कर्ता है जो रानी का सतीत्व बह रहा है और पुरुष की मर्यादां गन्धित हो रही हैं ऐसे धारकबल काल में यदि पृथ्वी की रक्षा यहाँ से नहीं हो सकती तो फिर पृथ्वी को सत्य कौन सजता है? मुझे याद है अणुवेद के पृथ्वी मूल का अनुवाद करने समय का संगलापरण मैंने लिखा था, वह एक पात्र ही था। पृथ्वी मनी है उग संपनाम स जो महापती है। उमनी स्तुति है —

सत्य बत संपन्न धीत स्वभाव
तपस्या दीक्षा हीन मान।
निरन्तर बले धर्मि को ज्योति
घरा में हो बिलुप्त स्वात।

विदनी उगात वृति है—पृथ्वी सरय से तपी है और सत्य की शक्ति यहाँ से है। यहाँ का परिणाम संयम है और संयम स्वयं एक तपस्या है। विने दीक्षा ही बर सकन है। इतना एक होने पर ही ज्ञान की उत्पत्ति है पर इसकी रक्षा के लिए निरन्तर तापना का अभिष्टोच अनाम अनिशर्क है। यही महापतों की तापना है। इसीसे संसार में महता का बीज हुआ है। व्यक्ति ऊपर बना है।

यहाँ तक तो कई महापतों की बर्चा है पर दिग्ने पमे है जो इन महता

तक पहुँच सकते हैं ? इसलिए आचार्य श्री तुलसी सरस बिडानों ने धलुवतों की रचना की। धलुवत सृष्टि के ब मूस आचार हैं बिन पर सारे नैतिक बर्चन-आत्म का धितान्यास किया गया है।

जब आचार्य श्री तुलसी से मेरी धलुवतों के सम्बन्ध में चर्चा हुई तब उन्होंने बताया कि सबसे पहला धलुवत है—अपने को दिन में एक बार देखना। जितना स्पष्ट घोर मरत दर्शन है। 'know thyself' महात्मा मुकरत का अर्थ है। 'आत्म पहिचाने' गोरब साधु पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। सारा ज्ञान धरम ज्ञान है घोर सारे ज्ञान की धारमा म सय है। धारमा के पहिचानने के पश्चात् सृष्टि रसमय हो जाती है। बीजन प्रयोजनमय बन जाता है। सभी बृदा एक से नहीं हो सकते। धारम-बर्चन का धिद्वान्त भी ऐसा ही मनोमय है। बर्चन से ज्ञान की ज्ञान से बिराम की बिराम से धारम्व की घोर धारम्व स यह की उत्पत्ति है—बही जो अतहक नाप है जिसे आचार्य श्री तुलसी ने 'धान्ति' घोर 'धुष्टि' का रूप दिया है घोर बौद्धों ने 'निर्वाण' तथा वेगान्तिवों ने 'धारम्व' के रूप में स्वीकार किया है।

धलुवत-धान्दोसन की दूसरी बिधपता यह है कि वह ब्यक्ति पर कुछ न तारकर जमे ही जुनने का धबिकार बेठा है। किसी प्राचीन बर्चन की पुस्तक को उठाकर देखें धाप देखें कि सारा बर्चन नियेधारम्व है। धायद ही कोई ब्यक्ति ऐसा हो जो जनकी दृष्टि में पापी न हो। 'पाप' का यह सतत बर्चन हम कामुप्यमय बनाता है। धलुवत-धान्दोसन हमें ही जुनने का धबिकार बेठा है घोर प्रत्येक ब्यक्ति में हित-अहित की स्वतन्त्र संज्ञा स्वीकार करत हुए उस प्रजाधीन प्राणी बनाता है। स्पष्ट है नैतिकता के इन दो धमूस्य धिद्वान्तों की घोर धलुवत धान्दोसन की दृष्टि है घोर यही इन धाम्दोसन की बिधेपता है।

सदाचार और नैतिकता का भ्रान्तोत्पन्न

—श्री धोमाशाल गुप्त
सहस्रम्पादक, द्विगुस्तान

सदाचार और नैतिकता की आवश्यकता को प्रत्येक युग में स्वीकार किया गया है। दुनिया के प्रायः सभी बंधों ने मानव-जाति को सदाचार और नैतिकता की विरासत दी है। सदाचार और नैतिकता की आवश्यकता पर ही व्यक्ति का विकास और समाज का कल्याण हो सकता है।

आज सदाचार और नैतिकता के बगन बीजे पड़ गए हैं। इसीलिए दुनिया में जाहि-जाहि नहीं हुई है। व्यक्ति और राष्ट्र अपने सीमित और कुछ स्वार्थों की पूर्ति में व्यस्त हैं। दूसरों के हितार्थ का विचार करने की उन्हें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए चाहे जैसे उचित-अनुचित नैतिक-धार्मिक धारणों का उपयोग करने में कोई संकोच नहीं किया जाता। इसीलिए संसार में भ्रमण्डल है कलह है रक्तपात है विनाश है और अराजकता है। मानव-जाति विनाश के द्वार पर खड़ी है।

इन परिस्थितियों को देखते हुए मानव-समाज को नैतिकता और सदाचार की ओर प्रवृत्त करने की जितनी आवश्यकता आज है उतनी पहले कभी नहीं रही। धर्मकार जितना पना हो प्रयास की उतनी ही अधिक आवश्यकता अनुभव की जाती है। किन्तु सदाचार और नैतिकता की राह सरल नहीं है। वह बांटों से भरी राह है। उस पर चलने के लिए एक संकल्प की आवश्यकता होगी त्याग और बलिदान करना होगा और हर तरह के कष्ट सहने का तैयार होना पड़ेगा। अब दुनिया का प्रवाह जस्टी दिशा में बह रहा है तो नही मार्ग को पकड़ने के लिए हिम्मत और एक संकल्प की जरूरत होती है।

दुनिया में हमेशा अन्धकार और कुराई में समय होता आया है। अन्त में जीत अन्धकार की होती है। कुराई की शक्तियाँ मनुष्य को पतन की ओर ले जाती हैं किन्तु मनुष्य ऊर्ध्वगामी है वह कुराई की शक्तियों से लड़ता है और अन्धकार को धोखा देने की कोशिश करता है। केवल अक्षरत इस बात की होती है कि उसका भीतर छिपी हुई और छोई हुई अन्धकारियों की शक्तियों को जगाया जाए; उसके विवेक को जागृत रखा जाए ही कोई कारण नहीं कि मनुष्य अन्धकार से नैतिकता और सहायता न बने।

तेरपन्थ के वर्तमान आचार्य श्री तुमसीजी महाराज ने जो अक्षुब्ध-मान्दानन शुरू किया है, मैं उसे नैतिकता और सहायता की स्थापना का ही आन्दोलन मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह आन्दोलन व्यक्तिगत न भविक व्यापक बन और लोगों के जीवन में सहायता और नैतिकता को अनिश्चय स्थान प्रदान करे।

धर्मशास्त्रों के सिद्ध जो नियम निर्धारित किए गए हैं वे विषयान्तक हैं। वे कुराईयों का निरोध करते हैं। मेरी दृष्टि में वे कड़े नहीं हैं। समाज के वर्तमान निम्न स्तर को देखते हुए वे कड़े प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु वास्तव में वे कड़े नहीं हैं। एक अन्धकारियों को इन नियमों का पालन करना ही चाहिए। पौरजातीय करना रिश्तत सेना या देना पदार्थों में मिलावट करना और व्यापार में अन्य प्रकार से बेइमानी करना यह सब सामाजिक अपराध हैं और इन अपराधों को करने वाला कोई भी आदमी भला आदमी कहमान का अधिकारी नहीं हो सकता। य अपराध राज्य नियम के द्वारा भी दण्डनीय ठहराए गए हैं।

इसी प्रकार विदेशी बस्तियों को न पहचान धर्मशास्त्रों का प्रथम न उन धर्मशास्त्रों का सेवन न करने सम्बन्धी धर्म भी धर्म धर्म की आवश्यकता को पूरा करते हैं। स्वदेशी धर्मशास्त्रों-निवारण और मादक-द्रव्य-निषेध को राष्ट्र-विधा महारत्ना माधी ने भी अपने रचनात्मक कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया था। धर्मशास्त्रों में स्वदेशी बस्तियों सम्बन्धी नियम की ओर और व्यापक बनाने की आवश्यकता महसूस होती है। वह केवल बस्तियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए और उसमें बाधों का भी उन्मूलन किया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। धर्मशास्त्रों की बीमारी ने हमारे समाज में कुरीतियों का प्रसार पाया है। धर्मशास्त्रों के सिद्ध धर्मशास्त्रों निषेध का मैं विरोध रूप से स्वीकार करता हूँ। धर्मशास्त्रों जैसे सम्बन्ध

की निश्चानी मान लिया गया है। मैं असम्यता का ही प्रतीक मानता हूँ। मनुष्यत्व-मान्यता का मैं इसलिए भी स्वागत करता हूँ कि वह हमारे समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक कठिणों और कृटीयों पर प्रहार करता है। बृद्ध विवाह बहु विवाह मान विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथाओं का घट होना ही चाहिए। इसी प्रकार बड़े जीमनवारों और मृतक भौजों में भाग न लेना बहूज का प्रदर्शन न करना अथवा पीत न पाना वेदवा नृत्य में भाग न लेना प्रातिपदात्री न करना सामाजिक अशुभ्यता को रोकने के लिए जरूरी हैं और सामाजिक संस्कारिता के लिए भी आवश्यक हैं।

धार्मिक विषमता मानव जाति के लिए एक अभिसाप सिद्ध हो रही है। प्रायेण शान्ति युग में एक घोर धार्मिक लीला घोर घृणनी घोर अत्यधिक घनीटी को महम नहीं किया जाएगा। मनुष्यता को अपने परिपह की एक सीमा निर्धारित करनी चाहिए यह विचार स्वागत योग्य है। यह धार्मिक समानता की दिशा में अन्वेषणात्मक उद्योग हुआ एक बरस होगा। अक्षय ही परिपह की यह सीमा लेनी न होनी चाहिए, जो प्रकृत हास्यात्मक प्रतीत ही। साक्षी और संबन्ध मनुष्य के जीवन को निर्धन बनायेगे और मनुष्यता के मुर्गों के विकास में सहायक हामे।

मनुष्यत्व-मान्यता में उनके प्रबलक को अतिरिक्त स्थान दिया गया है। वहीं उनके कर्त्ता और निर्वन्ता हैं। एक पंच के धार्मिक के नाते उनके प्रति वा अक्षय है, उनके इस मान्यता को पोषण और बन विमता है।

चरित्र गठन की एक तस्वीर

—भीमशो सुभेता कृपतामो
धम मंत्री उत्तरप्रवेश

गांधीजी का कहना था—जय के लोप घुड़ हा सेवापरायण हों। वे स्वराज्य का भी ऐसा ही धर्म करछ वे। य जीवनमर इसके लिए बेचटा करते छ। मात्र हमारे देश का स्वराज्य प्राप्त है पर जा काम हो रहा है उसछ उनमा लाभ नहीं जिनना होना चाहिए। करोबों रुपयों का मजन हो रक्षा है। ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर लोग धपन भाई मतीबों का रज रहे हैं। बड़ बुज की बात है हर महकमे म मात्र रिस्वतधोरी है भोरवाजारी है। देग की बड़ी-बड़ी याजनाएं ममत रान्ने पर जा रहीं हैं मुस्क म यह बहुत बड़ी ब्याधि है। इसका भगमी कारण है मन्चरिभता का धम पतन।

गांधीजी चाहते छ उनको सेवा में जो लोग हों वे निर्भोम और निर्भय छें। जह्म को जेस-जेसे हासिल करने के वे हिमापती नहीं छ। वे कहते छ—जह्म की ठगफ मन्वाई और ईमानदारी के साथ रवाना होये तभी मजन होवे।

इस याजार मुस्क की अदृष्टिका दता रहे है उसको बुनियाद को पक्का करना होगा। उसका जरिया है—सवाचार, मन्चरिभता। पर अकरोम यही है कि कने कीन ?

बड़ी प्रमत्ता है कि आचार्य भी तुलसी जिनका जीवन धर्म्यात्म-साधना और मजन का है इस और प्ररणा दे रहे हैं। उगठ मसमी बीज को समझते हैं। वे जानत हैं लोमों में चरिब-मुधार की कितनी बड़ी घाब-पकटा है ? बिना चरिब के कुछ नहीं बन सकता यही बात दून-दून कर गांधीजी हममें भरते वे।

जैनधर्म में सदियों से पांच शतों की परम्परा है। ये शत हर धर्म की बुनियाद हैं। यह किसी एक धर्म की नींव नहीं है। जैनधर्म में महर्षि की बात यह है कि प्रसन्न-प्रसन्न स्वर के सोनों के लिए साधना का प्रसन्न-प्रसन्न रूप बताया गया है। जो सारे संसार से मिलिप्त होकर रहते हैं उनके लिए शतों का ऊंचा रूप है और जो जीवन को सम्पूर्णतया धार्मिक नहीं बना सकते उनके लिए शतों का मध्यम रूप है। वे छोटे-छोटे नियम लेकर अपने जीवन को प्रकटा बना सकते हैं। यह बड़ा सुन्दर बन्धारा है।

इन सोनों को संस्थापी सोनों को चरता बताने के लिए धनुषत-प्राबोसन धाचार्य भी तुमसी की बहुत बड़ी है। इतिहास के प्रसन्न-प्रसन्न जमाने में प्रसन्न-प्रसन्न शब्दों होती है। मूल रूप में बात एक है, पर उसकी व्याख्या के रूप की जमाने के अनुसार माय होती है। धनुषत-प्राबोसन धात्र के जमाने में अहिंसा धारि शतों की व्यावहारिक रूप में प्रेष करता है। जैसे अहिंसा का धर्म है—
 किमी जीव को न मारना। धाचार्य भी तुमसी ने अपनी मौलिकता के धनुषत धनुषतों में जो नियम रखा है कि 'हत्या न लोड-लोड का उद्देश्य रखने वाले किसी दस या मरणा का सरस्य नहीं बनना और न उनके ऐस कार्यों में भाग लेना' यह नियम धात्र के लोकतन्त्रीय युग के लिए कितना धनुषत और लाभ कारी है। इसी तरह एक दूसरा नियम है 'किसी भी व्यक्ति को अस्युक्त नहीं मानना। दुनिया में सब बराबर है। डेमोकरी में कोई किसी को पीछा क्यों समझे—इन समानता की भावना को बहुत बड़ी प्रेरणा यह शत देता है।

धात्र जैसा कि समय का उत्पन्न है धाचार्य भी ने अहिंसा धारि धर्म सिद्धांतों की धनुषत प्राबोसन के रूप में जो जीवनोपयोगी व्याख्या की है इनसे जगत का बहुत बड़ा उपकार होया।

एक मुक्त की जनाई चाहते हैं पर हो नहीं रही है क्योंकि देव में अरिज गठन की कभी होगी या रही है। धाचार्य भी तुमसी ने धनुषत प्राबोसन के रूप में सबके सामने अरिज-मठन की एक तरबौर रखी है।

भारत का वैश्विष्ट्य तब इन बात में रहा है कि यह एक धार्मिक देव है दुनिया को नैतिक रास्ता बनाने वाला देव है। लेकिन बड़े धनुषतों की बात

है कि आज हमारे देश में नैतिकता की कमी नजर आ रही है। मैं जब अमेरिका गई थी तब वहां रामकृष्ण मिशन के स्वामी निखिलानन्द ने मुझे बताया कि अमेरिका हिन्दुस्तान की धर्म नीति और दर्शन का देश मानता है पर दुःख की बात है कि हमारे मौज्जाज धर्म और दर्शन की बात तक नहीं मानते जो हमारे देश की घसली चीज है घसली देन है। धर्म और दर्शन की बातों को तो हम एक बार घसप रखें साधारण रूप से नैतिकता और धार्मिकता की जो शिक्षाएं हैं उनको भी वे नहीं मानते और न बीता जीवन बनाने की कोशिश करते हैं।

अय्यंगर-मान्योत्तम का जो काम चल रहा है उससे मुझे बहुत खुशी है। मैं चाहती हूँ इसके प्रचार का लोगों पर असर पड़े। वे अपने संगठनों में इसे अपनाएं। इस मान्योत्तम के भावार्थ व्यक्ति व समूह में माने चाहिए।

नहीं हो जाता वह शासक रहता है। धनुषत-भाण्डोलन मनुष्य को धर्ममूर्ख बनाने का ही एक गूढ़ी धनुष्यता है। धनुषती होने के साथ-साथ व्यक्ति की वैयक्तिक तथा सामूहिक सन्नत्याण स्वयं विरोहित हो जाती है। मुनि श्री मकराजजी के ही शब्दों में बत मानस का इदंम संकल्प तथा बीचन की सुन्दर-राम मर्यादा है। यह आत्मानुशासन का प्रतीक धीर देवी-बाबुलामों का निष्कार है। वेद में लिखा है—'मिषत्य अक्षुपा समीक्षामहे'—अर्थात् समस्त संसार को निज की दृष्टि से देख। स्वयं भववान् बुद्ध ने कहा है कि यदि मनुष्य अपनी गृष्ठा पर विजय प्राप्त कर ले तो वह एक दुःखी एवं विषमताओं की पीठ बना है। यदि धनुषत-भाण्डोलन के सम्बन्ध में यह कहा जाए कि धर्म व र्मस्तुति का वह समग्र मिथोड़ है जो एक ही प्यासे में एकरस करके प्रस्तुत किया गया है तो प्रतिप्रयोजित नहीं होगी।

इस धाम्नीजन का विकसित करने के लिए प्रत्येक स्कूल-कॉलेज जहाँ जायी जायिक पर स्वरूप निर्धारित होता ही प्रत्येक कार्यलय—सरकारी एवं गैर सरकारी—प्रत्येक मिस एवं प्रत्येक संस्थान में धनुषती स्वयं पाकर बालक-बालिकाओं कर्मचारियों एवं शिकों से धनुषत-बीजा निबाएं धीर उनमें धनु-गामन स्नेह एवं मित्रता की भावना जावत करें। मेरा तो यही मत है कि यदि धनुषत-भाण्डोलन को शक्य बनाया है तो स्कूल व कॉलेज स्तर पर इसका प्रचार किया जाए। इसके लिए प्राथमिक संघन एवं प्रचार तथा दूरबीसता की आवश्यकता होगी।

धणु से महान् की ओर

—स्वामी प्रेमपुरीजी

मानव महत्वाकांक्षी है प्रगतिशील प्राणी है। वह देश कास की सीमा से भी परे पहुँचने का साहस रखता है। अपनी व्यक्ति को समष्टि में समाविष्ट करने पर तुला हुआ रहता है अपने विद्युत्मात्र को धान्यविधि में बरसा कर एक तर बने के लिए तत्पर होता है अपने प्रयुक्त को महत्त्व में मिला देने के लिए प्रातुर रहता है और अपनी इस प्रातुरता को प्राप्त करने के लिए अनेक साधनों को अपनाता है। उनमें प्रमुख साधन है—धणुव्रत। भारतीय व्रतों की भावना किसी बुराग्रह या अन्धधरा के कारण नहीं बनी है किन्तु अनुभवमय्य मौसिक सिद्धान्त पर आधारित हुई है। मानवीय आत्मा का प्राणी मात्र की आत्मा के साथ ऐक्यानुभव ही प्रामाणिकीय धणु प्राणि व्रतों की आधार-धिया है। जिसे अपनी धणुता का अनुभव होता है वही महत्वाकांक्षी हो सकता है। धणुता के अनुभव से अपनी समुदाय का असन्तोष उत्पन्न होता है और वही महत्ता की भाकांक्षा को उत्तेजित कर देता है। जब तक समुदाय का असन्तोष नहीं होता जब तक महत्ता की भाकांक्षा का अधीन क्यों कर हो सकता है? कल्पयि नहीं हो सकता।

अहिंसारि धणुव्रत के विकास के लिए आहार-शुद्धि परमावश्यक है। लुचक का प्रभाव मन पर उत्साह ही पड़ता है अतः हियामय आहार का सर्वत्र धमि काय है। जहाँ धारमीयता होती है वहाँ हिंसा नहीं होती प्रत्युत प्रेम होता है। अपने शरीर के अंगों में धारमीयता है तो किसी अंग से किसी अंग में हिंसा तो क्या द्वेष तत्र नहीं होता प्रत्युत प्रत्येक में परस्पर अनिष्ट प्रेम ही होता है। प्रत्येक अंग एक-दूसरे के लिए सहयोग सेवा एवं सहायता करने में प्रस्तुत रहता

है। यों अहिंसादि स्व-मरीर में प्रतिष्ठित हैं। जैसे-जैसे अहिंसादि की शक्ति बढ़ती जाती जैसे जैसे उसका क्षेत्र भी व्यापक होता जाएगा। मरीर से कुटुम्ब में कुटुम्ब से विद्यालय में विद्यालय से मानवमात्र में धीरे मानवमात्र से प्राणीमात्र में अहिंसादि की प्रतिष्ठित हो-सकेगी क्योंकि धार्मिकरूप के वाले प्राणी मात्र में धार्मिकता होने पर प्रेम बरबस हो ही जाता है धीरे प्रेम में एत-अपत आदि न होने के कारण अहिंसा के साथ सत्य अस्तेय आदि भी अपनाया ही जा सकते हैं।

परगुणती धर्मबन्धी होता है। वह अपनी समु-वृष्टि को अन्ध-यही बनाता है। अन्ध-अन्ध से घट-घट में घट-घट से सिद्ध-सिद्ध में शीर सिद्ध-सिद्ध से अज्ञान-अज्ञान में व्याप्त एक ही धार्मिक के वर्णन करता है। जो धार्मिक 'धर्मपुरी' नामक सम्पत्ति धीरे-धीरे लिये जाता बन रहा है, वही नामक नामक पाठक-नाटिका धीरे-धीरे बहने वाला बनेगा। जो बोलने वाला है, सुनने वाला भी वही है, जो रोता है, रोता भी वही है। जो बैठकर एक हाथ से पचोपता है, दूसरे मुँह में बैठकर भोजन भी वही करता है। केशा मखा है। न कोई रोकने वाला न कोई टोकने वाला न किसी का पहचान धीरे न किसी प्रकार का लक्षण। वह यज्ञ ही यज्ञ प्रेम ही प्रेम है। किसी महती धर्मज्ञ है यह। यही महत्ता की कसौटी है, अन्ध भी यही है।

परगुणती को अपने प्रति दूसरों के कर्तव्य की अपेक्षा दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य का मान अधिक होता है, अपने अधिकारी की अपेक्षा दूसरों के अधिकार का ध्यान अधिक तथा सम्पूर्ण रहता है। वह समझता है कि जैसे कोई वैरी हिंसा (हानि) करे तो मुझे क्या होती है जैसे ही मैं जिनकी हिंसा करूँगा उन्हें भी पीड़ा होगी ही। जैसे वैरे लिए कोई बटु या अक्षय भाषण करे तो मुझे अधिक करना है जैसे मैं भी यदि किसी के लिए बटु या फूट बोर्मुया तो उन्हें भी बनेगा ही सबेबा—'घटा घात्र मे मैं कभी नहीं धीरे किसी क सामने बनना, बाबा, कर्मला न तो किसी करे किसी प्रकार की हानि पहुँचाऊँगा धीरे न ही किसी के लिए अक्षय या अक्षय 'जायल ही करूँगा।' परगुणती के इस संकल्प का अर्थ-वर्तन नई देव नाम बालु में विचार ही भिने पर समया इत परगु न

रहकर महाव्रत होता हुआ मार्गभीम बन जाता है ।

धनुव्रत का अनुष्ठान किसी प्राविमीनिक या प्राविधिक माम की नियत में नहीं करना चाहिए, मन्कार वा मन्मान की सामना में धनवा घनादर या अपमान के मय से भी नहीं होना चाहिए, किन्तु जीवन के एक अभिमान्य धर्म के रूप में सतत घोर स्वामाधिक होते रहना चाहिए । व्रत के बिना धन ही न पड़े रहा ही न जाए, व्रत जीवन में भी प्रिय बन जाए, एसी नियत से धनुव्रत का साधरण बराबर करते रहना चाहिए ।

धनुव्रती में ऐसा अभिमान नहीं होता कि मैं व्रती हूँ । अभिमान हाते ही धन 'व्रत' न रहकर मिथ्याचार में परिणत हो जाता है । उसमें वास्तविकता नहीं रह पाती दिलावा-मात्र रह जाता है अर्थात् इन्माचार या पातण्ड का रूप धार लेता है । धनुव्रत के अभिमान से उसकी महत्ता छिड़ नहीं होती । जिसमें महत्ता होती है उसमें अभिमान नहीं आता । धन क साथ अपनी एकता करके व्रतहीनों से अपने को घेष्ट मानने का नाम अभिमान है । अभिमान के कारण जिनमें व्रत का धभाव या कमी देखने में आती है, उनको तुच्छ समझ कर उनसे भूग्या होने लगती है और जिसमें अपने से अधिक व्रत-निष्ठा नजर आती है, उनको बमर्ही मानकर उनसे ईर्ष्या होने लगती है । भूग्या ईर्ष्या प्रादि प्राहिषा प्रभृति देवी सम्पत्ति की बिरोधी आमुरी मन्मथा है सुतरां धर्मवा स्याम्य है ।

जो सच्चा व्रती है, उनको किसी से भूग्या ईर्ष्या या बिडेप नहीं होता । वह जो सजीव निर्जीव सब में समभाव से बिराजमान अपने आत्मदेव के दर्शन करता हुआ सबसे अपने समान प्रेम करता है । धनुव्रती की यही महत्ता है कि उसका जीवन धर्मे के लिए न रहकर ब्रह्माण्ड भर के लिए हो जाता है । वह अपने स्वार्थ को सर्वार्थ में सम्मिश्रित किए रहता है । धनुव्रती किंच मानव होया हुआ चिरवाठीत भी होता है । वह किसी भी प्रकार क भेदभाव रख बिना ही संसार की स्नेहवरी मश में संमज्य होता हुआ भी धन्तर से एकदम अलग रहता है । परमव्यानिधान परमात्मा की प्रसीम दया से हम धनुव्रत के द्वारा महाव्रत में पदार्पण करने के लिए भाव्यपानी बनें ।



नैतिक पुनर्जागरण

—डा० हरेकृष्ण मेहता

तात्कालीन राज्यपाल, बम्बई

धार्मिक और मानवतावादी दृष्टिकोण अनादिकाल से हमारी सनातन सभ्यता के परम्परागत मुल्यार रहे हैं। जीवन में संयम और गतिरता युक्त-युक्तों से हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है। परन्तु युवों की वासना-अन्व निरुत्साह एवं द्वितीय महायुद्ध-जनित धभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप आज हमारे जीवन में नीचता का स्थान अनीति ने ले लिया है। आज-जीवन में व्याप्त घोर अनीतिकता एवं अक्षय ने पुनः-मानवता की जड़ों को फिटना खोजता एवं निर्भीक कर दिया है—यही आज के विचारक के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अनीति-अक्षय समाज में आज जीवन के नैतिक पुनर्निर्माण का प्रश्न फिटना महत्त्वपूर्ण है—यह किसीने दिया नहीं है। इस दृष्टिकोण से अक्षय-धार्मिकता के द्वारा इस के विभिन्न भागों में नैतिक मूल्य जागृति का जो कार्य किया जा रहा है, वह अक्षय में परम पुनीत होने के साथ ही साथ स्तुत्य और अनुकरणीय भी है।

नीति सही धर्म का संयम का ही दूसरा नाम है। मन पर नियन्त्रण व्यक्तिगत विकास की कुंजी है। मन पर काबू पान की बात जैसे समाज में कही गई है। मगर मेरा अपना पैसा बिस्बाग है कि यह बात कहने में जितनी सरल है व्यावहारिक जीवन में इस पर अमल कर लेना उतना ही दुर्लभ है। मगर इसका अर्थ यह करना नहीं लगाया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपनी धीरे से मन के नियन्त्रण का प्रयास करना ही छोड़ कर बयौटि धार्मिक-नियन्त्रण के अभाव

यें तो व्यक्तित्व का सारा विकास ही ध्वस्त हो जाएगा जिसका नतीजा यह होगा कि कोई भी समाज या राष्ट्र सच्चे धर्म्युद्भव का स्वप्न भी नहीं देख सकेगा। संघर्ष से सदा उम्भूत समता और प्रगति ही पैदा होते हैं। अतः किसी भी व्यक्ति समाज या राष्ट्र का विकास उसके संघर्ष से नहीं संघर्ष से ही सम्भव हो सकेगा। दूसरी ओर मन पर काबू पाने के लिए व्यक्ति यदि सचेष्ट रहकर सदा प्रयास करता रहे तो मन पर पूरा नियन्त्रण न पा सकने की स्थिति में भी क्रम से क्रम व्यक्ति के जीवन में नैतिकता का प्राकृतिक ही अंतर्निहित रूप से होया ही। इसी दूर दृष्टि के कारण राष्ट्रविता बापू अपने जीवन का सब मूल्य के नियन्त्रण पर विशेष बल देते रहे। उनका अपना जीवन पूर्णतः सुसंयमित या एवं जन जन के जीवन को सुसंयमित व नैतिकतामय बना देने का उनका स्वप्न था। यह जानकर मुझे परम प्रसन्नता है कि धरतुल्य-भानुओं से भी धरने मूल में मन के नियन्त्रण पर ही आधारित है क्योंकि इन बातों (धर्म्युद्भवों) की स्वीकृति ही इस देश की मुक्ति है कि जीवन के निर्णायक व्यापारों में से व्यक्ति ने यथासक्ति अपनी कृतियों का संकोचन किया है जो मन पर नियंत्रण पाए बिना सम्भव नहीं। अतः जन-जीवन के नैतिक धर्म्युद्भव के लिए उत्प्रेरित और आत्म-नियंत्रण की आधारभूमि पर विकसित यह धर्म्युद्भव अपने मध्य तक पहुँचने में निस्सन्देह सफल होगा।

अन्तान्तराह में मेरी प्रार्थना है। मैं इस सपना को एक सदाय की भाँति ही मानता हूँ। पिछले जीवन के संश्लिष्ट पुष्प-कर्मों से मिथी मानवता का यदि हम अंतर्निहित एवं अंतर्निहिततामय बना कर दें ही धर्म्युद्भव बना दें हैं तो अपनी अंतर्निहित कृतियों से अति कर्मों का फल निश्चित रूप से अगले जन्म में मोचने के लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि एक व्यक्ति सदैव इस प्रश्न पर मतक रहे कि मुझे कोई बुरा कर्म न हो जाए तो वह अपने धर्म पर काफ़ी समय सोच कर सकता है। अस्तु-संघर्ष और आध्यात्म की पवित्रता पर बना जीवन का बीड़ा और क्या बीछसब—इस देश के सभी वर्गों ने विशेष बल दिया है मगर परिश्रमी सम्यता से अंतर्निहित धर्म का विहित-समुदाय आत्म-संघर्ष के महत्त्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं क्योंकि उसका विचार है कि इतने...

इस जगम में कोई नाम सम्भव नहीं।

यम धामतीर में व्यक्ति की धार्मिक घोर धार्मिक उन्नति का माध्यम माना जाता है। मगर इनका साथ ही धर्म के सहारे व्यक्ति की भौतिक उन्नति की भी बहुत बड़ी सम्भावना रहती है। सत्यप्रिय व्यक्ति समाज में सदा धार की दृष्टि से ही देखा जाता है। इसी प्रकार धर्म के धार्मिक युग में भी उसी कुदान पर सबसे ज्यादा धारक स्वयं प्रेरणा से जाते हैं जहाँ माव घोर व्यापारिक नीति सबके लिए समान रूप से एक होती है। राष्ट्रपिता महारामा गांधी ने तो इस सम्बन्ध में व्यावहारिक प्रयोग करके स्पष्ट रूप से यह सिद्ध भी कर दिखाया है कि सामाजिक उन्नति के लिए भी धर्म की संयम की विधुताचार की निरन्तर प्रेरणा रहनी है। अहिंसा सत्य प्रबोधन नैतिकता मैत्री धार्मिक निरिषण रूप में व्यक्तित्व को विकसित करने में सहायक होते हैं और साथ ही साथ इन विद्वानों पर चलने वालों की सामाजिक धार में यम घोर सम्मान तथा धार्मिक उन्नति भी शामिल होती है।

हमारा सत्य धार्मिक रूप से स्वाधीन हो गया है मगर जहाँ तक जीवन में नैतिकता का प्रश्न है धार भी हम धार्मिकता और संयम की गुलामी से अपने धारको मुक्त नहीं कर पाए हैं। अपनी इसी कमबोरी के कारण हमारे देश का इनका प्रचलन हुआ। विदेश रूप से ध्यान देने की बात यह है कि देश के हम प्रचलन में जिन्हीं भी व्यक्ति या राष्ट्र का हाथ नहीं प्रस्तुत नैतिकता से निर जाने क कारण ही देश इनका प्रवृत्ति हुआ। परन्तु इस प्रचलन के बावजूद भी प्रत्येक भारतीय का हृदय में धार यम घोर नैतिकता से परम्परा से बनी धार्मिक धार का वर्णमान है और इसी धार का यह मुख्य है कि अपनी समस्त समजातियों के बावजूद भी धार भारत की धार में सम्मान की दृष्टि से देना जाना है।

हमारे देश की यदि कोई सच्चा बड़ी समजाती है तो वह यह है कि भारत बानी कहेसे एक बल और धारक कहे कुछ धूमरी का। एक धार्मिक विद्वान ने हमारी मन विचार का विवेचन करते हुए जितना ठीक कहा है कि भारतीय धन-धान्य में ही मन बाम बरत है—(१) व्यक्ति का रूप का मन जो ऊँचे

सिद्धान्तों की धारद्वय परिकल्पना सेकर जमता है। (२) नीचे का अन्तरंग मन जो जीवन के व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र में सिद्धान्तों और धारद्वयों को ताक पर रखकर बहुत ही नीचे उतर कर कार्य करता है। बावें हम बड़ी-बड़ी करते हैं पर यदि व्यावहारिक जीवन का सही धारद्वयन किया जाए तो पता चलेगा कि हमारे कार्य कितने पोखे होते हैं। यदि भारत को विश्व के लिए कोई नया सन्देश देना है तो ऊपर और नीचे के मन के इस विभेद को दूर करना ही।

धर्म और अधर्म का व्यावहारिक धर्म यही है कि यदि हम बिना किसी बूझने व्यक्ति के हितों को बाधा पहुँचाए अपनी प्रगति करते हैं तो हम धर्म और नैतिकता के अनुकूल माने जाएंगे। मगर यदि हम अपनी प्रगति में दूसरों के हितों पर कुठाराघात करते हैं तो हम धर्म और नैतिकता के सब स्वीकृत सिद्धान्तों के विरुद्ध पहुँचेंगे। अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के प्रथम प्रयास से ही भारत इसी धारद्वय पर सामाजिक नैतिकता स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प है। पंचाक्षर में बलिष्ठ सह-अस्तित्व के सिद्धान्त की माननात्मक धारद्वय-भूमि यही है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विकास में बिना किसी प्रकार का अबाधन या बाधा उत्पन्न किए अपनी प्रगति के लिए सतत सचेष्ट रहकर आगे बढ़ता जाए।

सामाजिक नैतिकता के क्षेत्र में जिस प्रकार हमारे देश ने विश्व को एक बहुत बड़ी देन दी है उसी प्रकार हमें व्यक्ति की नैतिकता को ऊपर उठा कर जीवन में सच्ची मानवता का संचार करना है। धारद्वय की विरी हुई नैतिकता में हमारे उत्थान का सही रास्ता यही है कि हम सदा सचेष्ट रहकर जीवन संशुद्धियों को दूर करते रहें। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन के इस प्रकार नैतिकतामय बनने से उसका समूचे समाज पर कल्याणकारी असर होगा। जीवन-सुद्धि के लिए जलाया गया अणुधर्मों का यह नैतिकता मूलक धारद्वयन जन-जीवन के नैतिक उत्थान में बहुत ही सामर्थ्य सिद्ध होगा। ऐसी ही जनोत्थानकारी प्रवृत्तियों द्वारा समाज में एक नया मानवतावादी दृष्टिकोण प्रादुर्भूत होगा जिसके सुकल स्वकल्प जन-जन के जीवन में धर्मनैतिकता के स्थान पर नैतिकता का संचार होगा। किसी के अनिष्ट विस्तार की धारद्वय 'सर्वे भद्राणि परमन्तु' का व्यापक जीवन धर्म। हमारी भारतीय संस्कृति का सनातन सन्देश रहा है।

सम्भ—पुष्पे ज्ञान के अन्तर्गत उस पुस्तक से क्या मतलब को मानव-जीवन में सुयोग नहीं पैदा करती और स्वयं बोलती नहीं है।

सम्भ महोदय के धर्म बड़े सारगुल हैं। शत्रु तो निर्जीव हैं, जैसे ही इनमें घणाघ्न ज्ञान मय हो। वे मान पुस्तकालय की अलमारियों की घोमाख्य ही हैं, जब तक कोई प्राणवान् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन में बाध्य नहीं करता है। जैन-शत्रुओं में ठीक ही कहा गया है—'म धर्मो धामिनीविना धार्मिक पुरुषों के आचरण में ही धर्म जीवित रहता है। बस्तुतः धर्म विषय ही आचरण का है, शास्त्रों का नहीं। उसल सदाचाटी व्यक्ति ही धर्म को ब्राह्मणान् धीर उन्नीव बना देत हैं। दीपक में मिट्टी के बाध और तैल व बत्ती का नाम नहीं है, किन्तु दीपति ज्योति और प्रकाशबुद्धि हान से ही उसका अस्तित्व है। प्रकाश-विहीन दीपक सर्वथा निरर्थक है।

धर्मधर्म धीर लौकिक का सम्बन्ध

धर्म के तत्त्व देखे होने चाहिये जो जन-सामान्य ठाण आचरण में साये जा सके। जनम लौकिक धीर आरलौकिक धर्मों प्रकार के तत्त्वों का बूध सम्बन्ध होना चाहिये। धर्म किती धर्म के निष्ठात केवल धार्मिक-आरलौकिक हैं, ठर वह उस ताड़ के वृत्त के सट्टा ही होगा जिसके सम्बन्ध में धर्म कबीर ने ठीक ही कहा है—

अंधा अंधा तब कोई बहे, अंधन में ताड़ बहुर।

बैठन को छाया नहीं चल जाना है धर्मि बुर ॥

यदि धर्म केवल लौकिक ही धीर जन्में धार्मिकता की पुट न हो तब वह रबाबी धार्मिक देने वाला नहीं हो सक्ता। ऐसा धर्म धीर ही स्त्रियों का धन धारण कर निर्जीव प्रेरणासूत्र धीर स्त्रुति रहित हो जायेगा। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि किती ली समाज का निर्माण केवल स्त्रियों पर नहीं किया जा सक्ता। धार्मिकता धीर लौकिकता के उचित तथा बुद्धि बुद्धि सम्मिलन के आधार पर ही समाज का भवन गढ़ा हो सक्ता है। धीर के इन अर्थ 'दबलक्याय धर्मरय आपते महनी अयत्' क अनुसार इस धर्म का

इतिहासक शक्तियों का एकीकरण

—प्रो० यराधबल घोष,
सम्बन्ध विषय विद्यालय

मंसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वे जो अपने मानस को सम्बोधित करने वाले विचारों को निर्भीकतापूर्वक विश्व के सामन प्रस्तुत करते हैं और अनमल तथा परम्परागत रुढ़ियों की विरुद्ध क्रिये बिना अपने जीवन में उन विचारों को बालने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं—जिनके मानस में ऐसी ही हिमोरे उठती हैं पर वे हिमोरे सामाजिक भय संकाशों तथा धारम-विश्वास की बन्धी के कारण बाहर नहीं आ पातीं। मानस की बीमारियों से टकरा कर उनके तन में जा बैठती हैं और धीरे-धीरे समय के प्रवाह में इन हिमोरों का उठना भी समाप्त हो जाता है। बौद्धिक और सामाजिक अन्वयों की धारा में ऐसे व्यक्ति अनिच्छा से बहते जाते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी पैठना को मई है उनकी विश्व-कुट्टि कठित हो गई है उनका चिन्तन रुक गया है पर धारम-विश्वास की बन्धी के कारण यह सब कुछ अर्पण हो गया है।

जब हम उपरोक्त विचार के प्रकार में यूरोपीय देशों पर दृष्टिपाठ करते हैं तो हमें विश्वास होता है कि युद्ध-प्रेमी और मौक्तिकावासी यूरोप के दानवीय मानस के तन में इतिहासक शक्तियों की एक तरल बाध बह रही है। यूरोप के सामान्य व्यक्तियों में यह धारा धारम-भी लगती है और बाहर से देखने पर सपता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति धारम की प्रकृतियों और भाषणों के समर्थन एवं विकास में लगा हुआ है। यह एक समष्टितम चित्र है पर इस चित्र का व्यष्टितम पहलू इससे कुछ भिन्न है। इस चित्र में अनेक इकाइयां अन्वयतामक

भविष्य में भी अणुवत्-आन्दोलन जैसी जनोत्थानकारी नैतिक प्रवृत्तियों द्वारा जन-जन के भावस में नैतिकता का प्राविर्भाव कर हमें अपनी जसी विपत्त पर प्राये बढ़कर समस्या-संकुल युग की विपत्ताओं को सुमभ्रकर विश्व को समुचित मार्ग-दर्शन देना है ।

प्राहिंसक शक्तियों का एकीकरण

—प्रा० गणराजल गीद,
सम्बल विद्यय विद्यालय

मनार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक के जो अपने मानस को सम्प्रेषित करने वाले विचारों को निर्मीकतापूर्वक बिना के सामने प्रस्तुत करत हैं और अनमन तथा परम्परागत शक्तियों की विम्वता क्रिये बिना अपने जीवन में उन विचारों को हासने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं—जिनके मानस में एनी ही हिमोरे उठती हैं पर वे हिमोरे सामाजिक मत्र सकार्धों तथा धारम-विश्वास की कमी के कारण बाहर नहीं आ पाती। मानस की शीवारों से टकरा कर उनके तन में जा बठनी हैं और धीरे-धीरे समय के प्रवाह में इन शिलोरो का उठना भी समाप्त हो जाता है। बौद्धिक और सामाजिक जनवास की धारा में ऐसे व्यक्ति अनिच्छा से बहते चले जाते हैं। इसका परिणाम यह नहीं है कि उनकी चेतना खो गई है, उनकी विवेक-बुद्धि कंठि हो गई है उनका चिन्तन रुक गया है, पर धारम-विश्वास की कमी के कारण यह सब कुछ प्रपंच हो गया है।

जब हम उपरोक्त विचार के प्रकाश में यूरोपीय देशों पर इष्टिपाल करते हैं तो हमें विस्वास होता है कि युद्ध-प्रमी और शीतिष्ठाकारी युरोप क मानवीय मानस के तन में प्राहिंसक शक्तियों की एक तरल धारा बह रही है। यूरोप के सामान्य व्यक्तियों में यह धारा गाल्म-भी जगती है और बाहर से देखने पर लगता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति विनाय की प्रवृत्तियों और माधवों के समबंध एवं विकास में सवा हुआ है। यह एक समष्टियत चित्र है पर इन चित्र का स्पष्टिपाल पहलू इससे कुछ भिन्न है। इन चित्र में अनेक इनाइयां सुखनात्मक

मानवीय शीर प्रहिमात्मक है। तात्पर्य यह है कि यूरोप में अनेक प्रहिंसक शक्तियाँ विकसित हुई हैं। ऐसी कक्ष संस्थाएँ ये हैं—सोसायटी फॉर फ्रेन्ड्स (क्नेक्ट्स) पीस एंड युनिशन इंडाहोफ़ फार्द • पी • एस • पी • आदि। ऐसी अनेक संस्थाएँ यूरोप में विभिन्न रूपों में शान्तिवादी काम कर रही हैं। इन संस्थाओं से सम्बन्धित लोगों में ही प्रहिंसा शीर शान्ति के प्रति महत्त्व लगाव नहीं है, बल्कि यहाँ के आम लोगों में भी शान्ति शीर प्रहिंसा में गहरी निष्ठा है। परन्तु जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ भारत-विश्वास की कमी शीर बाबुमण्डल की भीषणता के कारण उनकी ये भावनाएँ प्रकाश में नहीं आ पाती। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है—ईस-विदेश की प्रहिंसक शक्तियों की एकता जिसका आधार विश्वव्यापक शान्ति शीर अन्तर्राष्ट्रीय सहमावना हो। दो वर्ष पहले जर्मनी में शान्तिवादियों की संस्थाएँ ही जापा, समुदाय राष्ट्र अमेरिका में एम डेफ के विरुद्ध प्रहिंसात्मक आन्दोलन बधिल प्रकीर्ण की प्रहिंसात्मक लड़ाई यह वर्ष इंग्लैंड में पी • पी • यू • द्वारा आयोजित अस्तुबम फेस्टी के सामने विशाल प्रदर्शन धारि अनेक अटलास इसका जीवन्त प्रमाण है कि प्रहिंसक शक्तियाँ प्रबल हो रही हैं परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। सबसे बड़ी आवश्यकता है—एक प्रहिंसक बाबुमण्डल का निर्माण। लोगों की मुक्त मानवीय शक्तियों को अपना शीर उद्योग प्रहिंसक आन्दोलन को बल देना। इंग्लैंड का शान्तिवादी शान्तिवादी 'पीस मूव' निर्भीकता से प्रहिंसा का सफलता कर रहा है शीर अपने निर्भीक लेखों में अस्तुबम युद्ध शीर अविनाश वैदिक सेवा का उच्च स्तर से विरोध कर रहा है। अविनाश वैदिक सेवा के विरोध में कई युवकों को जेल जाया भी करनी पड़ी।

भारत शीर विदेशों की प्रहिंसक शक्तियों में पारस्परिक सम्पर्क प्राप्त हो रहा है। आचार्य भी तुमसी द्वारा प्रवर्तित अस्तुबम आन्दोलन केवल भारत के लिए ही नहीं अस्तुबम मारे विश्व के लिए एक नई प्राणा है शीर इन आन्दोलन को विदेशों में धारि बढ़ाने के लिए इन संस्थाओं की शक्तियों विज्ञानों से सम्पर्क स्थापित जाना आवश्यक है। यह समय बुर नहीं है जबकि विश्व के विभिन्न भागों में विपत्ति हुई है प्रहिंसक शक्तियाँ इन आन्दोलन में समाहित हो जाएगी। विभिन्न रूपों में टिबटिमाने हुए शीर प्रमाणों में ही उद्योग देना शीर प्राप्त

की सीमाओं को तोड़ कर शान्ति प्रेम सद्भावना बन्धुत्व और ग्रहिसा की मापीरपी प्रवाहित होनी जिसमें दुःख विषमता अशांति अनिश्चिता एवं पीड़ा क प्रमिश्राप सदा के लिए बह जाएं। मात्र हमाए सबसे बड़ा कृतक्य है—इस ग्रहिसा की मापीरपी को भरती पर साना इन बीपकों को एक स्थान पर सान का प्रयत्न करना और विश्व के बिकरे भागों में शान्तिवादी बन्धुओं से सारमीयता स्थापित करना ।

अणुव्रत या अणुव्रम

—प्र० प्रमथान्व विज्ञपवर्माय एम० ए०

आज का विश्व एक बीराहे पर खड़ा है जहाँ से दो विपरीत दिशाओं में दो मार्ग जा रहे हैं—एक पूँजीवाद—साम्यवाद का दूसरा भौतिकवाद—आध्यात्मवाद का। एक का सम्बन्ध जीवन के बहिर्गत मूर्खों से है जो दूसरे का अन्तर्गत मूर्खों से। इस सृष्टि को आज पूँजीवाद और साम्यवाद तथा भौतिकवाद और आध्यात्मवाद के बीच चुनार करना है। प्रस्तुत लेख में हमारा सम्बन्ध पहले प्रश्न से न होकर केवल दूसरे प्रश्न से ही है।

हम अणुव्रत के मुँह से बसकर सड़कों बपों के सोपान को पार करत हुए आज धधुबुम तक जा पहुँचे हैं। जिस प्रकार आज का ब्रह्मानिक तत्त्व को छोड़ते-छोड़ते 'अणु' या 'एटम' तक पहुँच गया है उसी प्रकार हमारे प्राचीन तत्त्वदर्शी मनुष्य के अन्तरराष्ट्र करते हुए 'आत्म' तक पहुँचे थे। मैं 'एटम' और 'आत्म' में कोई अन्तर नहीं मानता—आर और आर दोनों की दृष्टि से। अणु की दृष्टि से तो इसलिए क्योंकि अंग्रेजी का बर्ण 'ए' हिन्दी में 'अ' का उच्चारण भी देता है और उसी भाषा का 'ऐ' और 'एम' हिन्दी में 'अ' तथा 'अ' का। आज की दृष्टि से इसलिए क्योंकि एक (एटम) भौतिक-तत्त्व के मूल तथा अन्तरज रूप का अन्वेषण है ता दूसरा (आत्मा) मानवीय तत्त्व का मूल तथा अन्तरम रूप का दर्शन। गुण की दृष्टि से भी दोनों में समानता है। दोनों में ही मूलमता अद्वयता व्यापकता एवं अविनाशिता है। दोनों ही की प्राप्ति में हमारी बलि बाहर से भीतर की ओर होती है। 'एटम' तक पहुँचने के लिए भौतिक तत्त्व के बहिर्द्वेष से बसकर एक-एक स्तर को पार करते हुए उसके अन्तर्निहित अस्तित्व अरूप रूप तक पहुँचना होगा है। इसी प्रकार आत्मा तक

पहुँचने के लिए धीरे से चलकर इन्द्रियों बुद्धि और पञ्चकोष्ठों के स्तर बीरने हुए चलना पड़ता है और जितने हम किसी पदार्थ की सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हैं, उतनी ही व्यापकता और शक्ति की प्राप्ति बढ़ती जाती है। विज्ञान और अध्यात्म दोनों ही साधन इसके प्रमाण हैं। अन्तर इतना ही है कि जहाँ 'एटम' के इन गुणों का प्रयोगात्मक रूप हम केवल प्राण ही देख पाये हैं वहाँ धारमा की सूक्ष्मता व्यापकता एवं शक्तिमत्ता को हमारे मह्यि और तत्त्व-चिंतक प्राण से सहस्रों वर्ष पूर्व ज्ञात और अनुभूत कर चुके थे। इसीलिए कहा गया कि वह 'अणोरणीयान्' होते हुए भी 'महतीमहीयान्' हैं। मगवान् कृष्ण ने भी धारमा की सूक्ष्मता एवं बाह्य प्रभाव-सूक्ष्मता में निहित उसकी शक्ति को पहचान कर ही कहा था कि—

नैनं क्षिप्रं च धारमाणि नैनं महति पावकः ।

न नैनं बलेद्यत्नयापो न शोपयति मासत ॥

मैं धारमा की व्याप्ति और उसकी शक्ति का प्रमाण उसकी प्रभावशीलता में मानता हूँ। धारमा जितनी ही सुदृढ़-सुदृढ़ रूप में होती है उसकी व्यापक प्रभावशीलता उतनी ही बढ़ जाती है। क्या कारण है कि राम की धारमा प्राण भी भर-भर में अपना प्रभाव छोड़ने में समर्थ है? क्या कारण है गांधीजी के लम्बे उपवास पर उन लोगों के हृदय भी जिम्होंने कभी उम्हें देखा तक न था मन्दिरोँ मन्दिरोँ और गिरजाघरोँ में जाकर उनकी बीर्बायु के लिए प्रार्थना करते रो उठते थे। निश्चय ही यह उनकी धारम-शक्ति का प्रभाव था। महारमाधोँ के घामे हिंसक पशुधोँ के भी पालनू बन जाने की जो बातें सुनी जाती हैं, उनके पीछे भी जैसी धारमिक शक्ति का चमत्कार है। बँसे तो यह धारम-शक्ति प्रत्येक में है पर जब वह अज्ञात या अदिकसित अवस्था में निष्क्रिय रहती है तो उसका प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता। उसे सक्रिय बनाने के लिए किसी न किसी रूप में तापना की आवश्यकता होती है। जैसे ही जैसे कि अध्यात्मिक को प्रभावक रूप देने के लिए उसे एक विजिष्ट जागृत एवं क्रियाशील स्थिति में सज्जित करना पड़ता है।

इसी प्रकार अधुन कितना सूक्ष्म धर्म एवं मन्त्रिणासी होता है। इसे धर्म के पुनर्जागरण के रूप में स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं। विनाय के लक्ष में उसके पाठक प्रयास हम देख चुके हैं और निर्माण के लक्ष में उसके अनुपयोग की सम्भावना हम जानते हैं। तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उस 'धर्म-शक्ति' और इस 'एतम-शक्ति' में क्या अन्तर है? अन्तर है और वह यह है कि वहाँ धर्म-शक्ति के अनुपयोग की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती। एतम-शक्ति का अनुपयोग हम अपनी भावों के भावे देख रहे हैं और उसके व्यापक प्रयोग के परिणामों की गहरी रीति के लिए स्यात् हममें से कोई न रहे। अस्तुतः धर्म का धर्म धार्मिक नहीं है वह जीवन और मरण का धर्म है। हम क्या चाहते हैं—सामाजिक और धार्मिक धर्म-रूपायण या 'जीवो धीर जीवो धी'। एतम धर्म के स्वामियों को यह भी सोचना होगा कि क्या उनमें से किसी का भी सामाजिक रूप से करने का अधिकार है? धर्म तो लक्ष्य है कि परिश्रम के सम्पूर्ण लक्ष्य का एक विपाक हो चुका है और विश्व की नर-नर में वह प्रवेश करना चाहता है। एक स्थान पर खड़ा उठता है उसे धीर-काङ्क्षर उसकी मरुतम पृथी की जाती है कि दूसरे स्थान पर उतर जाता है। धर्मिक यह ऊपरी विभक्ति क्या तक चलेगी? इसके पूर्व कि यह विपाक एक विश्व के रूप तक पहुँच जाये उसके सर्वांगीण लक्ष्य की आवश्यकता है पर परमाणु बमों और उद्भय बमों के विप्लव लक्ष्यों में मने हाथ इसे नहीं कर सकते। इसके लिए विश्व को एक ब्रह्म सेना होना बँसे ही जैसे पेट में कुछ विकार उत्पन्न होने पर सुद्धि के लिये भारतीय ब्रह्म रण मिया करते हैं। पत के दो पक्ष होते हैं, धर्म का धार्मिक और सद्बिचारों एवं सम्भावनाओं का बहू। विश्व की भी यदि निरीय होना है तो उसे परमाणु धीर उद्भय बमों की धोङ्कर सामाजिक धर्म विराम धीर सम्भावनाओं को धनाना हाया। यही अधुन है। राधी को साधना होना है कि वह क्या चाहता है—जीवन या मृत्यु? विश्व की भी सोचना हाया कि वह क्या चाहता है—अधुन या अधुन?

नये समाज निर्माण में अणुवस्तु का स्थान

—श्री श्रीमान्नाथ सिद्धाश्रमकार

धर्म के कई सतण किये गये हैं। सभी अपनी जगह सामक हैं। पर एक लक्षण जो अत्यन्त व्यापक सर्वथा निर्विवाद और सर्वमान्य है वह है—'यद् धार्यते स धर्मः' जो धारण किया जाये वही धर्म है, अर्थात् जो आचरण में लाया जाये वही धर्म का सच्चा स्वरूप है। जिस धर्म को दैनिक व्यवहार में नहीं लाया जाता जो केवल दसन-ग्रन्थों और शास्त्रों में ही बन्द है, वह बुद्धि तर्क और अस्तित्व की दृष्टापोह का विषय हो सकता है पर दैनिक जीवन का नहीं।

धर्म जीवन में पुस्तक में नहीं

एक बार एक सन्त के पास एक उत्साही धर्म-प्रचारक गया। अपनी धर्म पुस्तक भेंट करता हुआ बोला—'इसे पढ़िये आपको बहुत ज्ञान प्राप्त होगा। सन्त बड़े पढ़े हुए व्यक्ति थे। उन्होंने पहले पुस्तक को सूँबा और फिर कान के साथ समाया। धर्म-प्रचारक सन्तजी की इन शिष्टार्थों को देख मन में सोचने लगा यह कैसा मूढ़ व्यक्ति है? ज्ञान की मजार इस अद्वितीय पुस्तक को पढ़ने के बदले यह उसे सूँब रहा है और कान के साथ समा रहा है। कुछ देर बाद सुन्दर जिसने अपनी पुस्तक को धर्म प्रचारक के हाथ वापस करते हुए सन्त बोले—'पुस्तक देखने में बहुत सुन्दर है पर इसमें कोई मुगलब नहीं है और यह बोनती भी नहीं है।

धर्म-प्रचारक—पुस्तक में मला कैसे मुगलब और कैसे बोनते की शक्ति? यह तो अनुपम ज्ञान का भण्डार है।

अन्त—मुझे ज्ञान के लम्बार उस पुस्तक से क्या मतलब जो मानव-जीवन में सुखद नहीं पैदा करती घोर स्वर्ग बीमारी नहीं है ।

अन्त महोदय के शब्द बड़े सारपूर्ण हैं । बल्क तो निर्बीज हैं, मसे ही इनमें प्रगाढ़ ज्ञान भरा हो । वे मात्र पुस्तकालय की धलमारिबों की धोमाका ही हैं जब तक कोई प्राणवान् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन में धारण नहीं करता है । जैन-ग्रन्थों से ठीक ही कहा गया है—'न धर्मो धार्मिकैर्विधा' धार्मिक पुरुषों के धारण में ही धर्म जीवित रहता है । वस्तुतः धर्म विषय ही धारण का है, धार्मिकों का नहीं । उत्तम धर्माचारी व्यक्ति ही धर्म को प्राणवान् धीर धर्मी बना देते हैं । बीपक में मिट्टी के पाष घोर ठेक व बली का नाम नहीं है किन्तु बीपति ज्योति घोर प्रकाशमय होने से ही उदका धर्मात्मा है । प्रकाश-विहीन बीपक धर्मना निरर्थक है ।

धम्माराध घोर लौकिक का लक्षण

धर्म के लक्ष ऐते होने चाहिये जो धन-सामान्य द्वारा धारण में सामे जा सकें । उनसे लौकिक धीर धार्मिक दोनों प्रकार के लक्षों का पूरा समन्वय होना चाहिये । धर्म किन्ही धर्म के सिद्धांत केवल धार्मिक-धार्मिक हैं, तब वह उच ताड के कृत के लक्ष ही होना जिसके सम्बन्ध में कल कबीर ने शीक ही कहा है—

अंधा अंधा लक्ष कोई लक्ष अंधन में ताड लक्षुर ।

अंधन को धारा नहीं कल पाया है धर्मात्मा ॥

धर्म धर्म केवल लौकिक हो घोर उनमें धार्मिकता की पुट न हो तब वह स्वाधी धर्मात्मा देने वाला नहीं हो सकता । ऐसा धर्म धीर ही धर्मी का लक्ष धारण कर निर्बीज धर्मात्मा घोर लक्षुर रहिन हो पायेगा । यह ज्ञान मरा स्मरण रखनी चाहिये कि किन्ही भी लक्षण का निर्माण केवल धर्मी पर नहीं किया जा सकता । धार्मिकता घोर लौकिकता के धर्मात्मा तथा धर्मात्मा मुक्त धर्मात्मा के धर्मात्मा वर ही लक्षण का धर्म लक्ष ही सकता है । बीपति ने इन धर्म स्वल्प-धर्म धर्म-धर्म धर्मात्मा मनुष्यो धर्मात्मा के धर्मात्मा इन धर्म का

योड़ी भाषा में भी किया हुआ पालन महान् संकट से रक्षा करने वाला होता है।

बैंगिक जीवन में अणुवत्

शास्त्रों की तुलसीजी द्वारा प्रवर्तित अणुवत् में प्राय्यात्मिक और मौक्तिक धर्म उत्कर्षों का सर्वाङ्गीण और सुरम्य समन्वय है। ये सिद्धान्त नये हैं ऐसी बात नहीं है। धर्म के उत्कर्ष और अणुवत् ही होते हैं पर उनका प्रयोग देश कास और परिस्थिति के अनुसार महापुरुषों के गम्भीर चिन्तन के फलस्वरूप ही हावा है।

उदाहरण के लिये गांधीजी ने राजनीति में 'अत्याग्रह' शब्द का प्रयोग किया। इसके द्वारा उन्होंने विश्व में ऐसा अद्वितीय अमलकार किया कि भारत के इतिहास की विधा ही बदल गई। पर क्या 'अत्य' और 'आग्रह' शब्द भारतीय दर्शन में पहले नहीं थे? क्या इन शब्दों का प्राविष्टकार गांधीजी ने किया? नहीं अणुवत् अणुवत् के पर इन दोनों का समन्वय और इनके पीछे धर्म समूर्ण जीवन के अत्य अहिंसा के परीक्षणों का बल—यह ही गांधीजी की ही देन थी और इतने इस एक शब्द में अणुवत् में भी अधिक बल भर दिया।

इसी प्रकार 'अणुवत्' में निदिष्ट पाँच बात कोई नये नहीं हैं पर उनके प्रयोग की विधि शास्त्रों की तुलसीजी के गम्भीर चिन्तन और अज्ञात जीवन के फलस्वरूप गई है। इन अणुवत् में से एक अस्तेय को ही लें। धाज के अत्याचार कदाचार और दुष्टाचार पूरा समाज में एक नागरिक का यह व्रत लेना कि वह अस्तेय-वृत्ति भाग्य करेगा बड़े से बड़ा प्रलोभन माने पर भी किसीके साथ छद्म कपट व धम्याय का व्यवहार नहीं करेगा—क्या समूचे नागरिकों में वियुक्त-गति के अस्तेय एक अनिवार्य सहर पैदा नहीं कर देगा? धाज हम देखते हैं कि पग-पग पर व्यापारी-ग्राहक और दुकानदार-करीबदार एक दूसरे को मूर्ख बनाने और अपने का प्रयत्न करते हैं। इन वृत्तों को बैंगिक जीवन में और छोटी-छोटी बातों में डालने में चारबाजारी रिश्तों भूटे बिल बनाने पूरा बैठक लेकर भी काम न करन भूटे सर्विकेटेक देकर पुष्टियाँ लाने इत्यादि धाज के विशिष्ट बड़े जाने वाली व्यक्तियों के अणुवत्पूर्ण व्यवहार भला नहीं

रह सके हैं ? इस घट के पालन से वाचक के अपने हृदय में धार्मिक और राष्ट्रीय जीवन में उत्पीडनीय उन्मत्ता घासेयी ।

हिंसा बढ़ रही है

धनुषत में एक मुख्य घट यहिवा नी है । समूचे बिस्व का वायुमण्डल धाम हिंसा और प्रतिहिंसा के घाट-प्रतिघाट से बिपाकत है । सम्भ्रान्तिमानों राष्ट्र प्रणुषातक धर्मों के निर्माण में होइ सता रहे हैं । ८० मास की धावारी के घहर लम्बन की १० मिनट में भूमिघात करने वाली उद्भजन धायुष तैयार हो गये हैं जो १९४५ में जापान में नागामाकी और हिरोशिमा नगरों पर केके घये प्रणुषकों से कई घुना धबिध तहारक है । धाम तृतीय बिस्वयुद्ध की भूमिका तैयार हो रही है जो प्रतिष्ठ बिचारक की बटैष्य रसेल के धर्मों में एकजम प्रलमहारी और मानवता का धम्य करने वाला होना ।

यह तो है सामूहिक हिंसा । व्यक्तिगत हिंसा भी घिष्ट तीव्रार्यों को लाज चुकी है । केवल घाहार को ही नें । धपनी पबान के बरके को पूव करने के त्रिप मानव धाम धरल्यय मुक और निरीह पणु-सखी और कीट-जतनों की हला प्रति मिनट कर रहा है । बिमान बिबिदता सौन्दर्य और गृह-भोगा इत्यादि की घाड़ में टिये जाने वाली हिंसा इगसे धसत है । धम्य बेघों की बात सोरुं केवल धान्त को ही नें । यह धितने सेर की बात है कि यहिवा के परम घठी कायू बिन्दुने लाप तक को मारने का निर्णय किया है—के धनुषायी बनने का बाबा करने वाली धाम की काधनी धरकार सुस्नमपुस्मा पणु-हिंसा को बढ़ावा देने के नये-नये ढंग नाम में नहीं सा रही है ? पोचीजी के धप्यन्त मनीष यह कर उनकी जिशाधों को धपछी तरह तममने वाली होकर नी भारत की स्वाभ्य धंनिगी राजकुमारी धमूतनीर के धम्य धरकारों को पब लिखकर प्रथि बिपा है कि भारतीयों के ईनिक धोबन में धन की मात्रा को कम करने मांन मलय और धरतों को धपिठ रबान दिया जाये नये ढंग के नगारिगाने बापम जिने बाजे और मरनी तथा घुरी-नासन के नये लावाध और धुने धांगन तैयार किये धर्यें । मरनी को बाकर धाया बाये और कुर्तों के घरे और कुर्तों का मांन

मोजन का संग बनाया जाये। अंग्रेजी सामनकाम से घाब गौ-हत्या अधिक हो रही है। स्कूलों की पुस्तकों में और रशियों के प्रोपामों द्वारा मांस बनाने और खाने की विधि का जोरों से प्रचार हो रहा है। बाहरों में मांस की बूकानें बढ़ रही हैं और सुबक-सुबकियों में मांस भक्षण मद्यपान और भ्रूणपान तीनों का निरन्तर प्रचार हो रहा है। बिबाह इत्यादि धार्मिक समारोहों में भी सामिष मोत्री निरामिष भावियों की प्रपेक्षा अधिक होये हैं।

इस प्रकार के सामिष और स्वास्थ्य-नाशक आहार का परिणाम क्या है? देश में हत्याकाण्ड बाका बोरी अग्निबाद, दुराचार और अपहरण की अनियन्त्रित वृत्ति। केवल हिस्मी में ही १९४६ की हत्याओं से १९४५ में घाट कुनी अधिक हत्याएं हुई हैं और कई हत्याओं में बातकों का अमी तक पता नहीं चल सका है।

नये समाज की नींव

इस पृष्ठभूमि में आचार्य श्री तुलसीजी के अणुवत्त का एक भाव पहिछानना केवल लौकिक दृष्टि से ही किन्तु अत्यन्तिकायी है। अणुवत्ती को कम से कम अपने आहार-स्ववहार में तो अक्सर ही हिंसा से प्राप्त होने वाले आहार का त्याग करना होगा। इसका उसके धारीरिक सामाजिक और धार्मिक समूचे जीवन पर प्रभाव पड़ेगा।

इस प्रकार अणुवत्त आन्दोलन' आर के भारत के पठनीमुख समाज का एकमात्र उद्धारक व पथ प्रदर्शक है। इसमें राष्ट्रीय जीवन को एक नूतन स्वास्थ्य कर और अर्थव्यवस्था में अग्रसर करने की प्रबल शक्ति है। इस अणुवत्ती उन्नति के प्रेरक अणुवत्त-आन्दोलन के प्रकृत आचार्य श्री तुलसीजी महाराज को भगवान् विद्युत् पुत्र प्रदान करें राष्ट्र की एकमात्र वही कामना है।

पलटा ऊँचा रहना है

—श्री यज्ञपाल जी

सम्पादक, जीवन-साहित्य

संसार के इतिहास में घास तक कोई भी युग ऐसा नहीं बीता जिसमें केवल सत्युक्त ही हुए हों और न कोई ऐसा युग ही मिसता है जिसमें केवल दुर्जन ही हुए हों। सभी युगों में भले-बुरे, दोनों प्रकार के व्यक्ति पाये गए हैं चाहे जा रहे हैं और चाहे भी पाये जाते रहेंगे। यह भी सत्य है कि हर युग में ऐसे संत-मनीषी हुए हैं, जिन्होंने अपने दुनीय जीवन और उदात्त वाणी से संतुष्ट व्यक्तियों को सत्य सत्य और स्वामी शान्ति का मार्ग दिखाया है। जिस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर के पहल घन्टकार को बुर करने के लिए उपाय का आचरण होता है उसी प्रकार मानव-जीवन के अन्तुष के निवारणार्थ नीतिनिष्ठ व्यक्तियों और शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ करता है।

घर कर व्यक्ति कहा जाता है उदात्त जीवन का क्या होता है वह फिर से जन्म लेता है या नहीं पारि-भारि प्रसन्न रहते रहते हैं और उनके उत्तर विभिन्न मतों के लोभ विभिन्न प्रकार से देते हैं। जो हो, लेकिन एक बात में सब सहमत हैं और वह यह कि आदमी के साथ दुनिया की कोई भी शक्ति बस्तु नहीं जाती सब कुछ यही पूरा जाता है। उर्दू के महान् कवि बजीर ने मोह-आया में निम्न प्रार्थनों का अंशकभी देते हुए बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा—
'तब टाठ पढ़ा रह जायेगा जब माह बसेगा बंजारा।' इसी माह को एक अन्य कवि ने हमारे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

'माया का भी सिकन्दर
दुनिया से से माया क्या ?

वे दोनों हाथ जाली
बाहर ककन से निकले ।

प्रश्न उठता है कि जब अपने साथ कुछ भी नहीं जाता तो प्राथमी मोह
मन्या में इतना क्यों पड़ता है और प्रकाशण क्यों इतनी चीना-झमटी करता है ?
उत्तर स्पष्ट है । इसलिये कि उसमें यह घड़ंकार है कि मैं कुछ हूँ और महत्वा
कांक्षा है कि मैं यह और वह अपने अधिकार में ले लू ।

धार्मिक की सारी व्याधियों की जड़ ये ही दो वृत्तियाँ हैं—घड़ंकार और
स्वार्थ । एक तीसरी वृत्ति और है जो व्याधियों की जड़ों को मूलतः प्रवर्धित
रखने में भी का काम करती है और वह है—समा-कीर्ति की भूठी साक्षता । दुनिया
का मारा लेता इन्हीं तीन वृत्तियों के बलबूज पर समा जा रहा है । इन तीनों के
हाथ में व्यक्ति कञ्चुतसी बना रात-दिन नाच रहा है । कभी वह समा का
पाटी बसा करता है तो कभी रंक का कभी घट्टाहम करके टैमता है तो कभी
बहाड़ मारकर रोता है ।

कोई पूछ सकता है कि मैं प्राथमी ! यह सृष्टि प्रनादिकाल से जमी
घाई है धागे भी जलती रहेगी । धागिर यह टिकी किन्तु धाधार पर है ?
बुढ़ई की सीब पर तो कोई भी इमारत देर तक लड़ी नहीं रह सकती । प्रश्न
बिलकुल ठीक है । उत्तर है—दुनिया बुराईयों पर नहीं समाईयों पर टिकी है ।
कौन नहीं जानता कि ब्रूणा पड़ जोदती है प्रेम उमे जमाठा है असन्तोष
व्यक्ति की धाँधों पर पट्टी बाँधता है सन्तोष उमे बिबेक से धाये बड़ने की प्रेरणा
देता है भोज भीजे पड़्डे में बडेलता है, संयम ऊँचाई पर से जाता है भूठ
कायर बनाठा है सत्य धारमा का बिकाम करता है हिमा बँर के बीज बोती
है, धहिमा प्रेम की बाटिका समाली है । हर व्यक्ति के धाये दो रन्ते हैं—
एक रमातस में बँमाने वाला और दूसरा है बीरीप्रकर की पीटी पर बड़ाने
बाना । जो बिपर जायेमा बँसा ही फल पायेगा ।

एक मूल बा । उसके पास कुछ भूमि थी । उसमें उमम बबूस के बीज बाय
और कल्पना करने लगा कि एक दिन धाम के पेड़ उमगे और उमे मीटे-मीट
फल पाने को मिलेंगे । उम मूल की जालि धाब धपिबाग मौप रमातस क

मार्ग पर चल कर पीछेकर ही चाटी पर पहुँचने की धाधा बनावे हैं। यही कारण है कि हमारा वैयक्तिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन बहुत नीचा हो गया है। हमारी धार्यों पर स्वार्थ का पर्दा पड़ गया है पर अब वृष्ठी पर प्रत्यकार फैलता है। कोई न कोई नैतिक धर्म प्राकृतिक होती है— वाहे वह कुछ बहावीर, ईसा बापी विनोबा वा तुमसी किसी भी रूप में हो।

प्राय की वृष्ठी को दूर करने के लिए जो सत्यवादी हा रहे हैं उनमें अगुपति विचार का अयमा महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका मुख्य उद्देश्य जीवन का परिपोषण करना है। वह व्यक्ति को सब कुछ उखार हरि भजन की बात नहीं कहता उसका प्रेमपूर्ण आग्रह है कि जो जहा है वह वहीं रहे पर अपने जीवन और कार्य को अनेकधा से दूर रहे और एसा प्रयास करे जिससे उसे दुनिया में अटकना न पड़े अतः और धर्मि का अनुभव हो। जिस प्रकार विनोबा के सुखान्ता आन्दोलन के पीछे केवल प्रेम की शक्ति है उसी प्रकार अगुपति-आन्दोलन के पीछे भी प्रेम का ही आग्रह है।

प्राय व्यक्ति हीरान है तपात्र दुःखी है राष्ट्र व विश्व जन से पर-पर बाँध रहे हैं और मानवता मानव की शक्ति के धार्यों में कटुह रही है। क्यों ? इसलिए कि प्राय मानव मानव नहीं रहा है। यह शक्ति बहुत दिन नहीं चलने की है। दुःख का चलका बहुत समय तक जारी रहेगा तो दुनिया डूब जायेगी। हव समुत्पन्न रहना है। समुत्पन्न ही नहीं भलाई का वपदा अंधा रहना है।

अगुपति-आन्दोलन में मानव का मानव बनाने के लक्ष्य है। उसे नहवाई से उभरना है और नित्य से उभार बनना है।

अनेक वट देगकर बड़ी प्रसन्नता हीर्ता है कि अगुपति विचार अंतरीतर स्थापन होता वा रहा है और सहयोगी व्यक्ति उनको और अर्थापित हो रहे हैं। मेरी बापना है कि यह विचार दर-दर पहुँच और हमारे जीवन को बाहु-मात्र बनाने में सफल हो।

भाषाय तुलसी का अणुव्रत भान्दोलन

—श्री पुष्पेन्दु

सहस्रम्पादक—मन्मथोदय, मन्मथ

अणुव्रत-भान्दोलन हमारे देश के लिए प्रायः नया या अरिचित अभियान नहीं है। धारम्भ में जब अनेक कृष्ण मित्रों में अणुव्रत की चर्चा बनी तो कुछ ऐसा लगा कि यह नाम धार्मिक दृष्टियों के इस अणु-युग की देन होगी। किन्तु अब तो यह है कि अमल संस्कृति में इसका उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है। भाषार्य तुलसी से पूर्व यह बात किसी के मस्तिष्क में भी न आई कि व्रतों को लेकर कोई अल्प आग्रह बलाया जा सकता है अथवा सार्वजनिक रूप से उनके प्रसार के हेतु मुख्यतः स्थित अभियान चलाया जा सकता है। प्रायः तो भाषार्य तुलसी के लगभग ६४० साधु-साधवियों और हजारों अनुयायी इस भान्दोलन के सर्वतोमुखी प्रसार के लिए कटिबद्ध हैं।

कृष्ण मित्रों ने यह भी विचार प्रकट किया कि व्रत तो सभी महान् हैं फिर उनके पहले अलु विधेयगुण समाना अनुचित है। सरसरी तौर से सुनने पर बात ठीक ही लगती है किन्तु ठीक एक कर विचार करने पर विधेयगुण की उप-श्रीविता पर प्रथम ध्यान आकर्षित हो जाता है। समाधान के लिए कृष्ण दास जी ने भी यह सजता या किन्तु मैंने अधिक अन्वेषण यह समझा कि स्वयं भाषार्य तुलसी के पास जाकर इन सम्बन्ध में उनके विचार प्राप्त किए जायें।

भाषार्य जी तुलसी के सामीप्य में आने तथा उनके कुछ प्रवचनों में उपस्थित रहने का सुप्रबन्ध प्राप्त हुआ। अणुव्रत का जो कायाकन्द उनके द्वारा हुआ वह मन्मथ प्राय की पीड़ित मानवता के लिए बरदान है। धर्म-धर्मियों के शायरे में रहे वह प्रवाह को भाषाय श्री ने एक लौकीरकारिणी गति ही मानों

मगीरख संघा की बरती पर उठार माये हों ।

अमल साहित्य में अधुनत पांच बताये गये हैं जो पहिला सत्य अर्थात्, ब्रह्मचर्य धीर अपरिग्रह के नाम से विख्यात हैं । साधना की आरम्भिक स्थिति में इन्हें अधुनत तथा मुनि अवस्था तक आते-आते इन्हें पांच महाव्रत की संज्ञा की गई है ।

आचार्य तुलसी ने सर्वसामान्य के लिए इन व्रतों को पूज्य व्यवहारिक बनाने के साथ ही सम्प्रदायगत सीमाओं के बन्धन से उन्मुक्त कर दिया है । उनके बिचार से कोई भी व्यक्ति आत्म-विकास के हेतु किसी भी प्रकार के सम्प्रदाय में नहीं बाधा या रुकावट । अधुनत का मूलतः जीवन को प्रवृत्ति की धोर आसने के लिए संबन्ध करना है । सराचार या संयम के लिए कोई भी सीमा निश्चित करने पर वह एक के लिए व्यवहारिक तो दूसरे के लिए अव्यवहारिक है, एक के लिए सरल तो दूसरे के लिए कठिन है । जिस प्रकार आस्था के आरम्भ में कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकता उसी प्रकार प्रवृत्ति की रुकावट पर भी कोई व्यक्ति सीमा नहीं लगाई जा सकती क्योंकि साधना की कठिन से कठिन सीमा भी किसी के लिए सरल हो सकती है । विकास का आरम्भ या समाप्ति अमानुष बनने का अन्वय संकल्प है । वह सीमा से असीम की ओर बढ़ने का गतत प्रयास है । आचार्य तुलसी के अनुसार साधना को पुरुषार्थ की उन्नीबता चाहिए, धार्मिक सिद्धान्तों की निर्बीबिता नहीं ।

आचार्य तुलसी के मतानुसार अधुनत नाम से व्रत की महत्ता में अनुमान नहीं, बल्कि परिश्रम की व्यवहारिकता है । संघा अस की कठोरे में रहने पर भी वही गुण रहते हैं, जो आचार्य संघा में । आचार्य मुई के धर्म में आचार्यीय गुणों से युक्त है धीर विमान दुर्ग की विचारों से विरक्त भी वही आचार्य है । धीर या यज्ञ विचार की धीरता है, स्वभाव की धीरता नहीं ।

अस यह उठता है कि क्या यह जल्दी है कि कोई व्यक्ति अधुनत में दीक्षित होकर ही आधी प्रवृत्ति का पथ चुने । आचार्य तुलसी का ठेगा कोई आग्रह नहीं । उसके अनुसार आत्म-आरम्भ की है सम्प्रदाय में दीक्षित होने की नहीं । व्यक्ति किसी भी धर्म या सम्प्रदाय की सीमा में अपने विन्दु उभे अपने

जीवन के नैतिक बरतन को उठाना होगा। मयाभ्रन्त मानवता को निर्भीक जीवन बिताने के लिए मय से भागना नहीं होगा बल्कि संयमपूर्वक सामना करना होगा। धत संयम को सुव्यवस्थित प्रमति देना ही धनुषधत-आन्दोलन का मूलाधार है।

धनुषधत की जीवनधर्मा संयम का क्रमिक अभ्यास और धनुषधत का प्राणध आत्माबलोकन है। आत्म-विकास में जो कभी महसूस नहीं होती हो उसे दूर करने के लिए असफलताओं के बीच से गुजर कर सफलता को प्राप्त करना होता है। हां प्रयत्न में ईमानदारी अवश्य अपेक्षित है।

मिने प्रश्न किया कि ऐसा व्यक्ति जो धतन पोस्त या एसी ही अन्य वस्तु के बेचने का पेशा करता है क्या धनुषधत में उसे भी कोई स्थान है? मुझे उत्तर मिला कि वह बेचने के लिए बाध्य है किन्तु पीने या खाने के लिए तो उसका बन्धन नहीं है। वह स्वयं उपभोग न करने के संयम को ग्रहण कर सकता है। धनुषधत का उद्देश्य धावर्ध की ओर उन्मुख होकर चलना है। उन्मुख पथिक लक्ष्य से कितनी ही दूर क्यों न हो यदि ठीक दिशा में चल रहा है तो लक्ष्य के समीप धावेगा ही किन्तु विमुख मनुष्य लक्ष्य के कितने ही समीप चलना धारम्भ करे, वह तो दूर ही होता जावेगा। महत्त्व पथ पर धाने या पीछ होने का नहीं है अपितु उन्मुख और विमुख होने का है।

शाचार्य तुलसी और उनके संघ के समी सामु पीठन चलत है। एक नगर से दूसरे नगर के बीच कितने लोग निवास करते हैं उन मार्गों धाम और नामवाधियों तक भी तो पहुँचना है उन्हें। वे एक पीर लक्षणरु में रन कर दूसरा पीर कसकत्ते में नहीं रहना चाहते। वे तो मार्ग में पड़ने वाले जीव-जन्तुओं की पथिबिधि की भी उठाना नहीं करते हुए छोटे-छोटे ढगों से धाने बढ़ना चाहते हैं और धनुषधत-आन्दोलन भी तो छोटी छोटी सीढ़ियों से हो ऊपर उठता है।

धनुषधत-आन्दोलन में एककृपा और एक व्यवस्था माने के लिए मधरि कुछ विधि निधान भी है किन्तु उन सबमें याहरी धनुषधत की धनेसा आत्मानुनामन ही अपिफ है। आत्म-विकास को धारम-नियन्त्रण ही धाने बढ़ा सकेगा। एक प्रश्न में शाचार्य श्री ने कहा—आत्म धनुषधत की भावना से

हीन व्यक्तियों द्वारा राजकीय धनुषासन की कितनी उपेक्षा होती है, सब लोग यह पत्रों में पढ़ते ही हैं। आज परीक्षाएं पुस्तक के पढ़ने में होने की नीबट या गई हैं। फिर भी अध्यापकों को भय समा रहता है कि कोई अनैतिक कार्य से रोके जाने वाला प्रत्युष्ट विद्यार्थी छुट न भौक दे। इसको हम विद्यार्थियों का विद्या प्रेम मानें या डिबी छीनन की सूट-मार। इस देश में एक बर्ष या दस के लोग बोर नियंत्रण के लिए हमारे बर्ष या दस की धातुधना नहीं करते, बल्कि स्वार्थ के लिए वाली-मनीष करते हैं जहां लोग स्वर्न घोर बर्म प्राप्ति की मरीचिका में बड़े-बड़े बाल की पापणायें करते हैं पूजा प्रतिष्ठायें करते हैं, किन्तु दहेज-सिप्पा के कारण समाज में विपाकत बातावरण उपस्थित कर बते हैं।

एक धर्म प्रवच में धार्धार्य भी न कहा कि यह धान्योसन उन्मथित या पूजी-मथित नहीं है, न ही सकेगा घोर न यह किसी सम्प्रदाय विधि या प्रतिनिधित्व करता है। यह तो अरिभ-मठन का एक धार्धार्यिक धर्मियान है घोर जन-जन के लिए है।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद न एक स्वयं पर धान्योसन के प्रति प्रका प्रकृत करते हुए कहा है कि मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता तो इस बात की है कि इस धान्योसन में मार्क्सवादिता रूप स मिया है। मैं समझता हूँ कि सब लोगों में ये भावनाएं नहीं रह गई हैं कि यह कोई साम्प्रदायिक धान्योसन है। दस धान्योसन का एक मार्क्सवादिता रूप ही इसके मुनहरे प्रविष्य वा मुनहरे है।



नतिक प्रवृत्तियों में अणुव्रत

—श्री रियमबास रांका
सम्पादक जेन जगत

प्राणीमान में सुख की इच्छा पार्स जाती है और हर एक सुख-प्राप्ति का प्रयत्न करता है पर सुख की इच्छा रख उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वालों में स बहुत कम लोग सुखी पाय जाते हैं। इनमे यह प्रतीत होता है कि सुख प्राप्ति क मार्ग में मूल हो रही है तभी इच्छा और प्रयत्नों के बावजूद भी बहुत कम लोग सुखी हैं। सुखी बनने के दो मार्ग हैं। एक तो अपने सुख के लिए दूसरे को सुखी न बनाना और दूसरा अपने सुख के लिए दूसरे क सुख की परवाह न करना। दूसरे को सुख होता ही तो भी उसे सुख देकर अपने आप न सुखी न बनाना। एक में सबके प्रति समता का व्यवहार है दूसरे में अपने और अपने के प्रति आत्मीयता और दूसरे को अपने नहीं है उनके प्रति परयापन तथा दूसरे मार्ग में सबके प्रति समता और आत्मीयता का व्यवहार है। पहला मार्ग व्यवहारिकों का तथा दूसरा सतों का है।

व्यवहारिक साम ऐसा मानकर ही चलते हैं कि अपने आपका सुखी बनाना ही ता दूसरों क छोपण किया बिना सम्भव नहीं। हम जितन अधिक लोगों के परिषम का काम उठाएंगे उतने ही अधिक सुखी होंगे। दूसरों के परिषम का अधिक से अधिक काम उठाने का साधन है—सम्पत्ति। वह जितनी अधिक एकत्र हागी, हम उतने ही अधिक सुखी होंगे। इसलिए चाहे जिन माम में क्यों न हो सम्पत्ति एकत्र की जाये। उस एकत्र करने में दूसरे का छोपण हो या तुल्य भीमने में दूसरे क परिषम का अपहरण करना पड़े ता वह भी किया जाये। इसमें सुख-प्राप्ति का साधन सम्पत्ति माना जाता है जब कि मनु

सद्गुणों के विकास को मुझ का साधन मानते हैं।

घनेक विचारकों ज्ञानियों तथा सन्तों ने मुझ के साधनरूप सद्गुणों की शोख की घोर व्यक्ति तथा समूह के मुझ के लिए जिन पाँच सद्गुणों का प्रमुख स्थान दिया वे कोईसा सत्य प्रत्येक अपरिपक्व घोर ब्रह्मार्थ है। सभी ने इन गुणों को मानव जीवन तथा मानवी समाज के योग के लिए आवश्यक माना है। इनके बनेर मानव जाति में समता व्याप शान्ति और सबको विकास करने के लिए समान मौका मिल नहीं सकता।

सभी वर्ग वाले तथा विचार वाले यही चाहते हैं कि एक ऐसा पुम प्राप्त जिसमें शान्ति सब समता व्याप और सभी को विकास करने का समान मौका मिले। पर ऐसी स्थिति माने के लिए किस मार्ग को ब्रह्मण करें कौनसा साधन काम में लाएँ, इसमें धार्मिकों तथा विचारकों में मतभेद हो सकता है पर संत घोर ज्ञानी तो यही कहते हैं कि अनुभव का राजमार्ग सद्गुणों का उपनाना ही है। लेकिन धार्मिक कहमाने वालों में सन्तों के लिए साधर होते हुए भी जीवन में उनके बढाये हुए मार्ग से मुझी बना जा सकेता एमी निप्य का प्रभाव बाया जाता है। सन्तों को नमस्कार करने उनकी पूजा करने उनकी जय-जयकार मनाएँगे पर उनके बड़े मुझक बसने में नस्यारण है ऐसा नहीं मान्ये। उनकी पूजा प्रथा नमस्कार और साधर प्रशंसित करने में नस्यारण है और इसमें हमारे पाप धुम जाएँगे हम मुझी बन जाएँगे ऐसा मानकर मानवी सद्गुणों को उपनाना जकरी नहीं मानते।

हम यह तो मानते हैं कि मुझ वाले कर्मों का परिणाम है और उनको हमें चाह भी है, पर समा काम करना नहीं चाहते। अधुबत-आन्दोलन भूराज आन्दोलन का व्यवहार शुद्ध आन्दोलन यदि मानवी सद्गुणों का पालन रिये बिना—उन्हीं जीवन-व्यवहार में लाये बिना धेय नहीं होमा हम निप्य का जागत करने काम आन्दोलन है।

जिउने भी मानवी सद्गुण है क उपनानाकर जीवनकर्मों बनाये बिना हम तथा समाज मुझी नहीं बन सकता। अधुबत में कम ने कम जितना पालन संभव हो उनके पालन का संकल्प कर पाय बड़ने को कहा गया है।

प्रयुक्त-मान्योत्तन में कई बिचारकों को खतरा लपटा है, क्योंकि वह सम्प्रदाय विधेय का सम्य है और उसके संघासक एक बिसिष्ट सम्प्रदाय के प्राथम्य हैं। यों तुलसीदासीजी भ प्रयुक्त-मान्योत्तन को व्यापक रूप देकर अपनी उच्च भावना प्रकट की है। वे कहते हैं कि जाति जिन सम्प्रदाय या धर्म का भेद न रख कर यह मानव जाति के लिए है और प्रयुक्तियों के लिए जो नियम बनाये हैं, वे व्यापक हैं। फिर भी कई मित्रों को शंका है कि उनका भले ही उदात्ता का बोधा हो पर धरतर में संकुचितता—साम्प्रदायिकता है। हमारी मर्म मायता यह है कि मनुष्य और वह भी ऐसा व्यक्ति जो अपनी जिम्मेवारी को समझकर एक व्यापक मान्योत्तन बना रहा है यदि वह दम्मी हुंया तो उसका दम्भ प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए वे जो काम कर रहे हैं वह यदि उचित और प्रख्या हो ता उनका नाम दिया जाए और उनका अधिक व्यापक बनाने में हम योग्य हैं। उनमें कोई ऐसी बात हो कि वह प्रयोग्य हो तो हम उन्हें दूर करने में भी साधन बन सकते हैं।

फिर प्राचाय तुलसी एक सन्त हैं। सन्त की साधना से वे प्रपरिचित होने ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे बङ्गलन सम्प्रदाय या अपने धर्म के प्रचार के लिए यदि हम मान्योत्तन को बनाने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चित ही वे अपनी भावना में धामे नहीं बढ़ सकते। पर हमारा जो कुछ उनके साथ सम्पर्क प्राया हमें ऐसा ही मया कि वे सन्त हैं और साधना का पुरा स्वाक रख कर साध बानी बरतते हैं। वे इन बात को मक्की तरह से जानते हैं कि प्रतिष्ठा बङ्गलन या सम्प्रदाय का मोह साधना में बाधक है और वे जो बड़ा काम करना चाहते हैं उसको भीमाबद्ध करने वाला है। इसलिए उनका प्रयत्न है कि यह मान्योत्तन मानव जाति में सर्वमुखों की वृद्धि करने वाला व्यापक बने और हमारे देश में बनने वाले मुरान व्यवहार-मुक्ति प्रयुक्त-मान्योत्तन एक दूसरे के पूरक बन कर भारत में ही नहीं मानव मात्र के लिए कस्वाणकापी विद्य हों तथा मानव विद्य मुर की लोत्र में वसत रान्दे जा रहा है वहाँ से मुझकर टीक रान्दे धमे और मुली बने।

हमारी मानवता के प्रदियों से प्राचना है कि वे इन भारतीय मान्योत्तनों

में इतनी ही चीजें हैं कि यदि भारत में संसार का मार्गदर्शन न किया तो हिंसा सबका नाश करने के लिए मूढ़ बाधे लगी है। उनसे संसार को बचाया नहीं जा सकता। इसलिए व्यक्ति समाज राष्ट्र तथा मानव जाति के कल्याण के लिए भारतीय जाति ज्ञानी और सत्यों ने जो काम शुरू किये हैं, उन्हें धारण बढ़ाने में सहितब ध्यान दें।

इन तीनों धार्योत्सवों के संभालकों की भूमिका अलग-अलग है। आचार्य बिजोबाजी मकन हैं केदारनाथजी ज्ञानी हैं और आचार्य तुकसीमण्डीजी संयोजी। यद्यपि तीनों के निर्णय एक ही स्तर पर पहुँचते हैं, पर भूमिका में अन्तर रहने के कारण कहने के तरीके अलग-अलग होते हैं।

बिजोबाजी सबकुछों में भगवान के दर्शन करते हैं। दुःखियों का दुःख उनकी बर्दाश्त के बाहर है। इसलिए उनके पास नहीं है उसे वे, जिनके पास देने की शक्ति है उसे देने को कहते हैं, पर देने समय कर्तव्य समय कर दी अर्थात् किसी प्रकार की अपेक्षा न रख कर अनामना भाव से देने को कहते हैं। उन की धर्म से देने का सा अहंकार में नहीं डूबता और देने का तात्पर्य नहीं समझता। प्रदान सम्पत्ति दान अथवा दान की भाँति दान के द्वारा अनादीयता का विकास करना चाहता है और सबसे ऐसी माँगना प्रकट करना चाहता है कि जिनसे माँगना से अनादीय मिट जाये सब लोग माई माई ब बुरे लोगों की तरह उन्हें अनादीय कर अपने दुःख दूर करें। प्रदान द्वारा मानव सद्गुणों का विकास चाहता है।

केदारनाथजी मानवीय व्यवहार में जो अनादीय चाहते हैं—धर्म की बड़ी-बड़ी बातें और बचा करने वाले आर्थिक नाश की व्यवहार में ऐसा ही मानते हैं—व्यवहार मूठ के बिना चलता नहीं उन्हें वे अपने अनुभव न बूढ़ ही अर्थात् स्वर मानते हैं। उनके ज्ञान के अनुभव सुकन होने से वे मानव जाति को इस तरह मानते हैं पर जाने देकर उनका अर्थक जगाना चाहते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य मानव अर्थात् अनादीय अर्थात् अनादीय परिवार, अनादीय, प्रेम, अनादीय अर्थात् अनुभवों पर ही जगाने के व्यवहार बन रहे हैं अनादीय अनुभव ने आनादिकता कर ले जो अनादीय नहीं है वह उनमें अनादीय अनादीय जीवन

व्यवहार सुख बनाकर मानव अपना विकास करे। क्यों-क्यों जीवन लक्ष होगा मानव और समाज का कल्याण होगा।

सुलसीगलीजी समता के लिए त्याग और संयम को अपनाते को कहते हैं। यहिमा या समता का प्राप्त संयम के बिना संभव नहीं। इसलिए मनुष्य संयम और त्याग की धोर बड़े, यह आवश्यक है। वह कुछ न कुछ थोड़ा ही क्यों न हो, पर संकल्प करे, निश्चय करे कि मेरा साम्य प्राणीमात्र के प्रति सम भावना है, उस धोर बढ़ने के लिए मैं कम से कम इतना तो करूँगा ही। इसमें समता संयम और त्याग के प्रति निष्ठा रखकर इस मार्ग से अपनी व्यक्ति क अनुसार प्राप्ति बढ़ने का निश्चय है। जिसके जीवन में समता का अनुष्ठान होगा वह व्यक्ति अस्वस्थ, योग्य परिग्रह तथा अग्रहण्य को कैसे योग्यकर मान सकता है। उसे इस काम में बढ़ना है और वह प्राणु से प्रारम्भ कर यहाँ तक बढ़, ऐसी धोखा है। ये अनुभव हैं कि उनको उद्देश्य की समता की धोर कम बढ़ाना है इसलिए संयम और त्याग को जीवन में लाते हैं और वह व्यक्ति अपना और समाज दोनों का धोखा घाघता है। इसमें संग्रह को स्थान न होने से योग्य प्राप ही धान कम हो जाता है और परिणाम बही प्राता है या बिनोबा या शिवारनायजी माना जाते हैं।

संघर्ष मानवस्य

—श्री गोपीनाथ अयंगर

संघर्ष—सम संघर्ष समिति, दिल्ली

बताने हुआ तो बटवारे के साथ घोर दूसरे महापुरुष की समा-
 14। एसी बसा में यों कहना चाहिए कि स्वतंत्रता नैतिक
 उद्देश्य है। कहा गया है कि युद्ध में उठना मनुष्य का
 जितना कि मानवता का होता है। अंग्रेजी में तो कहावत ही
 वेम में सब कुछ ठीक है। भारत के जो सिपाही पहले महापुरुष
 ब्रह्म के अग्य देशों में होकर आये वे उन्होंने बाँध में फिर
 तातावरण का बोझ बहुत पश्चिमी रंग किया। दूसरे महापुरुष
 घोर भी पहुरा ही क्या। चोर-बाजापी भी दूसरे महापुरुष
 नैतिक पक्ष में यदि कुछ कठोर रह भी गई तो वह कैद
 ही कर दी। युद्ध की नियमित हिंसा से भी बचकर विमानन
 मित हिंसा भी। उसका विवरण दे कर पश्चिम पक्षों को
 : आहूत।

गिर महात्मा गांधी की आज सेने बानी साबित हुई। गांधीजी
 : के परवान् हिंसा का कुछ बप ता रका बरमु रूप से हिंसा
 कि गांधीजी को सम्येह था सही प्रकार हिन्दू-मुस्लिम बंगा
 : घोर विषमों में तथा हिन्दू-हिन्दुओं में बैर-विरोध में पड़
 गि में आचार्य जी तुमनी ने सन् 1945 में अणुबल-आम्बोजन
 तार गांधीजी से कहा था कि सत्याग्रह पुगनी बीज है सती
 की तुमनी ने भी कहा कि अणुबल प्राचीन है, परन्तु जैसे

महात्मा गांधी ने उत्थाग्रह को नया सामूहिक रूप दिया उसी प्रकार आचार्य श्री सुखी द्वारा धनुव्रतों को नया रूप दिया गया है। महाव्रती होना तो सबके बस की बात नहीं क्योंकि उसके नियम बहुत कठिन हैं परन्तु अपना अपने समाज और देश यहाँ तक कि समस्त मानव जाति का उत्थान चाहने वाला यदि थोड़ा साहस करे तो धनुव्रती तो बन ही सकता है। बात यह है कि जीवन को हम किस दृष्टि से देखते हैं। यदि उसका सक्षय साधो पीघो घोर मोड़ करो है यदि मनुष्य केवल बिना पूछ का पशु है, यदि भौतिक-वाद सत्य है तो फिर नैतिक विचार हमारे लिए नैतिक नहीं रहते। भौतिक-वाद में भी कई रूप हैं। एक तो वह जो आर्वाक का मठ है—

‘यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्,

मृतं कृत्वा मृतं पिबेत्’

घोर भव तो ‘मृतं पिबेत्’ के त्याग पर ‘सुखं पिबेत्’ होना चाहिए। हमारा रूप वह है जिसमें कुछ न कुछ धारम-त्याग का संस तो है, परन्तु सत्य और अहिंसा को समाज-निर्माण का मूल आधार नहीं माना गया। धनुव्रती के लिए सत्य और अहिंसा को समाज का मूलाधार मानना आवश्यक है। इसीमें अपरिग्रह भी आ जाता है। शूक्ति परिग्रह और हिंसा की सीमाएँ मिश्रित हैं। हिंसा का रूप भी असाध्य की घोर सूक्ष्म से सूक्ष्म हो सकता है। अपने का एक आना ब्याज सेने वाला मांस मखिरा से कितना ही बख्तेन करता हो और कितना ही सारा जीवन व्यतीत करता हो परन्तु वह धनुव्रती नहीं हो सकता। यदि कोई रस के बाहुलों को पार्सलों पर रकम देकर अपने आपको धनुव्रती समझे तो वह ठीक नहीं। बल्तर में केवल दिव्य सेवा ही अष्टाचार नहीं बल्कि सत्य पक्ष में केवल वा बख्ते काम करना भी अष्टाचार है। धन जो व्यापारी नमचाठी मजदूर या सरकारी नौकर इस आश्रीतन में पाते हैं, उन्हें बहुत समझ-भ्रमकर घाना चाहिए।

धनुव्रत-आश्रीतन को भी आज वही यथार्थ है या महात्मा गांधी के न्याग्रह आश्रीतन को या। कपड़न में मरनापही कहताने वाले दो दलों में जब

अणुव्रत धाम की परम आश्चर्यशक्ता

—श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार
सम्पादक सम्पदा

अणुव्रती संघ भले ही हमें अपरिचित अस्तुत या मर्बपा मनीन प्रतीत होता हो किन्तु अस्तुत यह न तो कोई मनीन अस्तुत ही और न अस्तुत । समय समय पर इस व्यवस्था का प्रचार पहले भी किया गया है और आज भी देश या अन्य देशों में विभिन्न रूपों में किया जा रहा है । मुख्य रूप में ही अणुव्रती संघ के दो उद्देश्य समझ लें—

१ त्वाय और संयमपूर्वक जीवन ।

२ धर्मविरुद्धता एवं अनाचार से मुक्ति ।

मानव-जीवन के दो पहलू होने हैं—मायाविक और निजी—व्यक्तिगत । भारत के प्राचीन ऋषियों ने दोनों कर्तव्य बतलाये हैं । पाँच सन्तोष तप स्वाध्याय और प्रशिक्षण पाँच नियम हैं । इन नियमों या शर्तों का उद्देश्य निजी—व्यक्तिगत जीवन की उन्नति करना है । ये पाँचों नियम मानव की उन्नति में प्रबल सहायक होते हैं । इनमें मग्नेह नहीं किन्तु स्मृतिकार भगवान् मनु करते हैं—

‘यमान् शैवेत सततं न नित्य नियमान् शुचः ।

यथाग्यतम्य कुर्वाणो नियमान् केवलान् भवन् ।’

(घ० ४ श्लो० २०४)

इसका भाव यह है कि ज्यों का पामन नित्य करें, केवल नियमों का न हों । जो मनुष्य केवल नियमों का पामन करता है यमों की उनेसा कर देता है —

जब इन यंत्रों के पासन के लिए समाज या सरकार को अधिक कठोर बनना पड़ता है। युद्धकाल में ज्यों-ज्यों पराधीन का प्रभाव बढ़ता गया त्यों-त्यों सरकारें राशन व कन्ट्रोल के नियम बनाती गईं। इन नियमों का मुख्यतः यही उद्देश्य था कि जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हर एक नागरिक पूर्ण कर सके। इसीलिए भारत के प्रधानमंत्री श्रीर जिम्नस्टर के एक व्यक्ति के लिए राशन की समान मात्रा नियत की गई। रुपड़ा मिट्टी का ठेस चीनी आदि के लिए भी मात्राएँ नियत कर दी गईं ताकि कुछ लोग उनमें बंचित ही न रह जाए।

यह राशन या कन्ट्रोल केवल भारत में ही नहीं चलाया गया। अन्य देशों में भी देश की असाधारण स्थिति को देखकर कुछ नियन्त्रण सपाये गये थे। स्वयं इंग्लैंड में रोटी काय उम्बाकू और चीनी या रुपड़े की मात्रा न केवल नियत ही कर दी गई थी बल्कि काफ़ी बटा भी दी गई थी। चीख बाड़ी पी मांग अधिक थी। मजदूर लोग वैसे के कम पर अधिक चीजों से से तो गरीब की हासत बचनीय हो जाए, इनलिय सरकार का अधिकतम मात्रा नियत करनी पड़ी जिनमें अधिक कोई न सी। युद्ध क बाद भी इंग्लैंड की सरकार न अपना नियम ब्यापार बढ़ाने तथा आयात ब्यापार को कम करने के लिए अनेक प्रकार के कठोर बरबन लमाय। भास वहाँ तैयार होना था परन्तु इंग्लैंड के बाजार में कम विकता था विदेशों में निर्यात जा जाता था क्योंकि इंग्लैंड को विदेशी मुद्रा की आवश्यकता थी। इंग्लैंड की जनता उन वस्तुओं के बिना बर्षों तक काम चलाती रही। यह भी एक सीमा तक अपरिग्रह या अणुपणु है।

अतः यह ही सचता है कि जब सरकार पड़न पर सरकार कन्ट्रोल या राशन की व्यवस्था कर ही देती है तब अणुपणु की आवश्यकता क्या है? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि अभी तक मनुष्य में वह त्याग की सामाजिक भावना उत्पन्न नहीं हुई जो उसे स्वयं अपरिग्रह के लिए प्रेरित करे। राजबन्धारी स्वयं कमजोरियों के पुतले हैं। उनकी कमजोरियों से सीमा अनुचित लाभ उठाते हैं और नियम का उल्लंघन करते हैं। राज-दण्ड के भय से वे बचने की व्यवस्था कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि कन्ट्रोल व राशन की पद्धति विधिम और बर्नाम हो जाती है। राज-नियम हृदय को नहीं बरसता है इसलिए

धात्रार्य की तुलसी के अधुनत का सुसुत धर्य धरिध सम्बन्धी नैतिकता है । देस के स्वाधीन होने के बाव तो हम धात्रिक समस्याओं को सुलझने में धौर एकधम धमीर बनने की बुन में भूम धये है कि देस का नैतिक व धारिधिन धतन जिस ठकी से हो रहा है वह राष्ट्र को दुर्बल निस्तेज धौर निर्धीय बना देगा । धाध्यारिधरुता धा नैतिकता का धिधिध समाज में से लोप होता जा रहा है । धाधव सरकार नैतिकता की धौर ध्यान देना धपने कर्धधय से बाहर समझती है । इसीलिए मैं धात्रार्य की तुलसी के धरिध सम्बन्धी धतों को बहुत धधिक महत्व देता हूँ । नैतिक उल्लान धी जिस नई भूमिका का वे सूत्रधात कर रहे हैं उस धर धलकर धारत धपने धौरव की रजा कर सकेगा धधयबा हमार धारत धारत न रहेगा । वह संयुनत राष्ट्र धमेरिका बन आया धा फ्रांस बन आया जहाँ धैसा धा बासना तथा धोधमय धौरव ही धारध है ।

अधुनत कभी-कभी कठोर धौर धधयवहारिक धीखते हैं, किन्तु सध्याई यह है कि धात्रार्य तुलसी धरिधिध धौर धानव की कधजोरी को धनुनव करधे हुए काफी धपबाव भी रलधे गये है । कर्धधान अधुनत धरम सीधा नहीं है वे तो केवल उस धिधा की धौर से जाने के लिए धरधम सोधान का काम करधे हैं । जिसकी धौर हमार धात्राव धौर अधि धुनि से जाना चाहधे हैं ।

मंगलमव धगवान् इस धान्धोलन को सफल करने के लिए धनता में धाधना उधान्न करे, मेरी उनके निकट यही धारधना है ।

विश्व-शांति का महायज्ञ अणुयज्ञ

—श्री रामेश्वर ५

घात्र समूचा विश्व मुझ घोर छांति भरलु घोर जीवन की दोष
 बाड़ा है। नव-नवम के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अणु उदर
 मेव माताएं समुची सम्बन्ध को भरलु दिनादि के लिए पल-पल प्रतीक्षा।
 हैं। संस्कृति घोर छाया के टैंकहार स्वार्थ घोर धम्म में मदमत्त घा
 पी घने में प्रमत्तघील है। सागर के भीरे भीरे गम्भीर बसा के भीचे से
 मुठी पट खे है। अन्तरिक्ष की क्षमता से भाग बरमने का मय बन-
 प्रातपित क्रिये हुए है।

नव को विश्व मुझों की अयाचहुता घोर हिरोधिमा-जानानाकी न
 हलु मानवता के जीवन के लिए एक बड़ी बुनीती मिड हो बुकी है
 घोर रात भरती की बज-भी छाती को फोड़कर मानव मान का पैठ नरं
 किसान मिड समय घन्ने छोटे ठ बासक को गोपी में मेकर उबरली
 को तिहारता है उस समय बुड की बलना जमे जीवित ही लाह बना है
 नून-ममीना एक करके बनों का नार बाकर ध्यानु के लिए बँटने मासा
 विश्व अथय प्राकाश में छांति की अमहारिखी बूँतों के स्थान पर रंका
 चमक देसता है तो रोटी छोड़ देता है। मुन्दर शिगु की बलना में
 नॉजली जिस नवय बभूनों की प्राकाश नुनती है तो जीवित ही मर का

कोन नहीं मानता की मुझ संस्कृति नम्यता न मानवता सभी को बर
 कर माता है। जिनु नीतिकषाकी पुण इव नबने कठिबित हुंकर भं
 स्वार्थ नर स्थित है। बड़े-बड़े राट्ट बंजावियों का नहारा मेकर नि

सब-संघों के निर्माण में रत है। इस प्रकार मानवता की हत्या की निवृत्ति-वैयोजनाएँ निमित्त होती या रहीं हैं। जैसे तो सभी राष्ट्र एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं कि तीसरा युद्ध विश्व के विनाश का कारण होगा। किन्तु फिर भी युद्ध की समस्या का हल मात्र एक कल्पनाओं के पर्म में पड़ा सिद्ध रहा है। इस सबका एक बड़ा कारण है—भौतिकवादी दृष्टिकोण। हर राष्ट्र यही समझता है कि उसका दृष्टिकोण सही है और दूसरे का यत्न। यही कारण है कि हर राष्ट्र के पास अपनी ही बात मनवाने का यत्न करता है और फिर उसमें सफल न होने पर दूसरे का शत्रु बन बैठता है। यत्न-यत्न बढ़ता जाता है। अपना-अपने पक्ष के गुटों का निर्माण होता है और उसके लिए भी बड़ा राष्ट्र छोटे राष्ट्र को हजम कर जाने का प्रयत्न करता है, कर भी जाता है। सबका मूल कारण है—धर्मरमबाह पर भौतिकवाद की विजय।

ऐसे धर्मरमिता की धोर बढ़ते युग में सश-मबा से भारत नतिकता का स-वेम देता धामा है। धात्र फिर इसी वेम से विश्व-शान्ति का बोध नूना है। धनुष-धाम्बोतन ध्यक्ति से बैकर समात्र समात्र से बैकर राष्ट्र और राष्ट्र से बैकर सृष्टि भर में नैतिकता के बै किरने बोने में संलग्न है जिसके द्वारा विश्व का हर ध्यक्ति निर्मय होकर रह सके किसी को किसी का भय न हो। कोई किसी को भयनीत न करे, सभी आपस में मित्र हों सभी का जीवन धान्तिमय हो।

भौतिकवादी दृष्टिकोण है युद्ध से मरने का भय है इसलिए युद्ध न हो' धाम्पारिमिक दृष्टिकोण है—'युद्ध मानवता का ह'यारा है धननिक है इसलिए वह न हो'। पहले दृष्टिकोण में यदि एन राष्ट्र अपनी सुरक्षा (अपनी दृष्टि में) कर लेता है तो युद्ध और धान्ति का उसके लिए कोई महत्व नहीं किन्तु दूसरे दृष्टिकोण में अपनी सुरक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न उठता है नैतिकता का। वह धिर-स्वाधी होता है। यही कारण है कि वह सच्चा समाधान भी है।

धात्र हमारे देश के ह'जारों कार्यकर्ता युय प्रबर्तक महान् धार्मनिक धाम्पाय भी धुनगीं द्वारा उद्घोषित धनुष-धाम्बोतन में जुट पड़ हैं। देश के महान् धनुष-धाम्बोतन धिधारक धुनि धी नयराजगी एवं विश्वात धताधधानी धुनि धी महेंद्रकुमारजी जैसे संघों का जीवन निरगत धनों में ध्यतीत न होकर भारतीय

भौतिकवाद व बाह्य साक्षर के सपेड़ों में फसकर मानव आज दिन प्रतिदिन चिन्ताओं से नई-नई व्याधियाँ से व्याकुलता से उपद्रवों से हिमाद्रि के उत्तुंग श्रृंग के बजाय नई के वर्त में गिरता जा रहा है। इच्छामें सीमित बन चुकी है। फंसमपरस्ती के बधीभूत होने से मानवता का हृदय से भोप-सा हो रहा है। सासला व प्रसोभन का प्रवाह नित्य प्रकटा लिए बह रहा है। बरिष नीति संयम धीर त्याग के प्रभाव में सही पक्ष से विभक्त हो जान पर भ्रम-भ्रमैया के जजाल में फस जाने से मानव जाति न आज धपना बहुत कुछ खो दिया है। उसे ही भौतिकता के आधार पर इसमें बह धपना बिकाम धीर भसा समझ लेकिन वास्तव में जब तक मानवीय सिद्धान्तों की हृदय में अनुभूति नहीं होती तब तक इच्छाएं नियन्त्रित नहीं हामी। संयममूलक भावना का जहां धपने जीवन पक्ष में प्रदर्शन नहीं हुआ वहां वास्तविक मानवता का प्रस्तुतन कहा ?

दुनिया में आज विज्ञान के नये-नये प्रयोगों के दुरुपयोग से नित्य नये दुर्घटनां हा रहे हैं। साखों की सफलतां स्पष्ट में कुटाई जा रही है। पर सच्चा विज्ञान वास्तव में है तो बन्धुता में समता में सहिष्णुता में धीर श्वादा रहे तो सत्याग धीर समय के प्रसर प्रवाह में विश्वमें अहिंसा निहित है। दुनिया के समस्त आज शिक्की भी पाठवाही सम्बन्धाएं हैं उन सबके दुष्परिणामों का मूल कारण है— अर्नतिवता माने बारसौबीसी। अगर व्यवहारिकता में धार्मिकता नीति धीर संस्कृति का पुट होना व्यापारिक नीति में प्रामाणिकता होती व्यक्ति-व्यक्ति में भ्रातृत्व होना एतवीय क्षेत्रों में ईमानदारी के मध्यग होते तो जना इन

समाज के व्यक्ति को परापूर्वों के नियमों की श्रुतता में फुड़ने का पूरा अधिकार है। वेच में बड़ी हुई भ्रष्टता पिछलेसोरी, प्रामाणिकता धारि का मिटाकर जन-जन के हृदय में भ्रष्टता का संज्ञानाव फुड़ने से ही निवृत्त पान्ति सम्भव है। अथवा नहीं। अस ही विज्ञान के महीन अमस्कारों से पुनिका प्रभावित होकर रह जाय पर यदि सान्ति की पुन-प्रतिष्ठा करनी है ता हमें भ्रष्ट प्रान्तीजन में सक्रिय बनना ही होमा और इसीमें हमार और राष्ट्र का भसा है।

होने। प्रकृति महामाता की सबसे छोटी इकाई और चिरस्थायी वस्तु अणु ही है जिनका स्वरूप प्रकाश है। अणुबम में जिन अणुओं का सन्निवेश होता है वे मिश्रित अणु हैं। अणु को वैज्ञानिक बुद्धि और मन से समझने के प्रयास में है जबकि साधु, सत्गुरु, ऋषि मुनि और बार्सनिक आत्मा और हृदय की भूक विषय वाली प्रेम से समझने और समझने के प्रयास में है। वैज्ञानिक ने अणु के विनाशकारी स्वरूप का ही विकास किया है जबकि आध्यात्म भी तुलसीदास जगत के समस्त अणु के कल्याणकारी स्वरूप के प्रयोगात्मक परीक्षण से प्रदर्शन किये हैं।

अणुबम आन्दोलन अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। इसीलिए उसके भविष्य का भसीमान्ति हृदयबम कर उसके भविष्य का स्वरूप समझकर हड़ता के साथ उस पर बढ़ते रहने का साहस धारण करना होगा। माधारण जगता अभी अणुबम की सम्भावनाओं का आकलन नहीं कर सकेगी। साधकों को सर्वत्र बसिबान करके समस्त मानवता को आने विकास के पथ पर बढ़ाना ही होगा। इस महान् कार्य का उत्तरदायित्व साधकों पर ही है। जगता पूरी शक्ति के साथ अणुबम का विस्तार करन के लिए तत्काल अवस्था में प्रसमर्ष है। उसकी शक्तियाँ विज्ञान-वीसा के प्रभाव में प्रसुप्त हैं, उन्हें जगता ही अणुबम का ध्येय है।

प्राज विद्या का जो प्रभाव है जो तो है ही पर जो कुछ विद्या है भी, उसका प्रवाह भी सस्ती विद्या में है। प्राज की विद्या अध्यात्म-विरोधी है विनाशकारी है अधोवनीय है। प्राज विद्या सर्वत्र गिजाती है। उसे प्रेम स्नेह साधना बत बोन सर्वत्र अध्यात्म पर विश्वास नहीं। अभी जो अणुबम के भविष्य की कल्पना प्रस्तुत कर रहे हैं, सम्भव है कुछ तार्किक बुद्धि वालों का जम पर विश्वास ही न हो पाये, पर जिनके शरीर के भीतर आत्मा और हृदय नाम की कोई प्रतीतिही दिव्य वस्तु विद्यमान होयी उन्हें ता हमारे प्रतिवेदन पर कुछ विचार करना स्वाभाविक ही होगा।

जीवन में बत वा बही स्वान है जो धर्म के क्षेत्र में सत्य का होना है। अणु बम की व्यास्तारक परिभाषा कुछ इस प्रकार से अपना स्वरूप धारण कर लेगी

की धनुषतमी भारत का प्राणों के बारे पानी के रूप में कस्याही शक्ति के चरणों में समपित करके अपने-अपने (मानवी हत्या के प्रयास में किये गये) पापों का प्रायश्चित्त करेंगे ।

धनुषतमी सामना के बल पर मृत्युञ्जयी हो सकेगा । वह धनुषतमी भी बनेगा । धनुषत का प्रती मानव परिस्थितियों का दास नहीं परिस्थितियों का स्वामी होगा । उसके मानस-तत्त्व इतना पवित्र और निर्मल होगा कि उसके मानस-मटस पर स्वयं अपने जीवन की भविष्य सम्बन्धी तथा धामामी विश्व सम्बन्धी सामूहिक समस्याओं के व्याख्यात्मक उत्तर स्वतः स्वल्पि में प्रकट हो जायेंगे ।

जाति को सामूहिक रूप से और व्यक्ति को उसके सीमित जीवन के क्षेत्र में विवशताओं निरुपाधों और मजबूरियों से मुक्त करने की विद्या में धनुषत धान्योमन एक बेसी शक्ति ही प्रमाणित होगा । क्या सामाजिक क्या राजनैतिक क्या धार्मिक वर्तमान समय में सभी मान्यताएं पुरानी पड़ गई हैं । उन पर कड़ि बादिता का आचरण पड़ गया है । धनुषत उनको हटाकर एक स्वच्छ और शक्तिशाली मानव समाज की स्थापना के प्रयास में लगा है । यदि धनुषत की विद्या किन्हीं विशेष कारणों से भवकूट न हुई तो यह निश्चित जैसा ही है कि मानव-समाज पूर्णतया विवशता के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा ।

धनुषत कहता है कि दूसरों के हित-साधन के लिए स्वयं तपस्या करो । इस विद्या में वह सर्वोदय की इस कल्पना से बहुत घाये है कि सबका उदय हो यही हमारी कामना और प्रयास है । जब धनुषत की कल्पना साकार होंगी तो वर्तमान की अतिक्रम मान्यताएं समाप्त हो जायेंगी जाति पाति के अस्तित्व ही नहीं रहेंगे सामाजिक अत्याचरों को वैराहिक प्रवा के आचरण में तब बंकर नही रखा जा सकेगा । गृहस्थ जीवन का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से व्यवहार करते समय विवशता के बन्धन से भबना आचर्यता की पाचविशता से बाध्य न होना । अनाद्यनीय और अयोम्य तथा अनिर्मित प्राणियों के संरक्षण-भार से पृथ्वी स्वतः मुक्त हो जायेगी क्योंकि उस समय हमारा लक्ष्य सन्तुष्टि-उत्साह भवना काम-कामना की पूर्ति या मरु की संरथा में उतारोतर बुद्धि

करना ही नहीं होना । तब हमारी मारण होगी हमारे धर्मोर्मों से एक मोम साक गुमा आम्हा है ।

अधुनत की मायना नबिष्य में हूँ इतनी पक्ति प्रवाण करेयी कि हमार मानस की प्रतीक्षा मृत्यु का भी करनी पड़ेगी । इन बिना पत्र-व्यवहार किये हजारों मील पर बंटे हुए अपने भारतीय मित्र की भावनाओं से परिचित हो सकेंगे । मुँड अगाति महामारी बुष्काल की संभावनाएं समाप्त हो जाएँगी । नु कि हम अपने स्वयं की व्यक्तिगत प्रकृति से भी अनभिज्ञ हैं, फिर बियास कि-ब-व्यापी प्रकृति के रहस्य को समझ सकने का प्रयास निष्फल ही होना । धाम का केवल बीदिक नैदानिक, प्रकृति के वास्तविक रहस्य को समझ सकेंगे यह अनाम्न नही कठिन प्रबन्ध है । प्रकृति को समझने के लिए केवल नस्तिष्क की हा मरने समस्त व्यासक चेतना का ज्ञान व सामञ्जस्य होना भी अनविवार्य है ।

अधुनत नबिष्य में समाज से शोषण धीर हिंसा को समूह बिटाने के बल में है । अधुनत के प्रत्येक मरस्य को असे ही बह वर्तमान व्यवस्था के अन्धर निष्ठी की परंपरा अचका किमी भी बप के अन्तर्गत क्या न हा उन धाम से ही अपना यह अर्थ बना लेना है उसे प्रतिका कर लेनी है कि हमारी मनी प्रकार की वर्तमान अकिन व सामग्री नबिष्य के निर्माण के लिए है । कस्यामकारी नबिष्य का निर्माण करने के लिए हम अपने वर्तमान का सर्वस्व स्वीकार व बलिदान करने के लिए सर्वेक तत्पर व प्राणुन रहना होगा । हिंसा-मुक्त समाज के निर्माण में जो बिज्ञान अथिक महयोग देगा उतनी ही अथिक उतनी कीर्ति नबिष्य के निर्माणकारी इतिहास में स्वयं अफिक्त हो जाएगी । अभी ही पुष्कल ही तैपार ही रही है । हम मनी तापनों को प्रसके लिए हर प्रकार का मूर्ख बुझाने के हेतु सर्वेक प्राणुन रहना ही चाहिए । मुष्कारमालोक हमारी बहुत प्राचीन धीर सर्ववर्षमाध्य बस्वध है इमी को पुष्ठी पर अचरित कर स्थापित कर देना हमारा मर्य है । ही बचवा है संशान्दिक बुष्टि में किमी अधुनती का बुनरे अधुनती से कृष अन्तरे ही अचका दोनों की बुदियारी मायना में अचरत अन्तर भी हो किन्तु फिर भी क्या हृषा दोनों मर्य के बार्ज वर नही दिशा में हो सके है । दोनों के प्रेक्षपूर्वक हर प्रकार से अहयोग के नाप अपने-अपने पत्र वर

बसते हुए परीक्षण के द्वारा प्राप्त मर्य को स्वीकार करते हुए तथा अपने अनुभवों को अपने जीवन की कमीटी पर पुष्ट करते हुए निरन्तर धामे बहने रहना चाहिये ।

मेख के अन्त में हम फिर एक बार अन्त आत्मीय स्वयंनों में कथना चाहते हैं कि प्रेम-राग्य ही हमारा सङ्ग है । इस उसके लिए पीढ़ी तथा अम अम तक प्रयत्न करते रहेंगे । प्रेमराग्य ही हमें अमरत्व प्रदान कर सकेगा । अनुभव मायना है और प्रेम राग्य मर्य । इसी वर्तमान रोषी और अन्तर्गत मायना समाज के अन्वयानुसार ही अनुभव समाज का निर्माण व विकास होगा । आधुनिक सामाजिक ज्ञान ही हमका एक उपाय है । अनुभव की मायना तथा सर्वोदय की मायना दोनों के प्रयत्न हम विना व अविनाशी स्यात है । अन्त व्यक्ति की पवित्रता के लिए अन्त का अनुष्ठान करें मानवीय अन्वयानु के लिए अनु के ज्ञान को प्रकाशित करें ।

आत्म निरोक्षण का अयसर

—श्री रामकृष्ण भारती

एम० ए०, बी० डी० विद्यावाचस्पति

बंगुरुवती-मय श्री स्थापना के द्वारा आचार्य श्री तुलसी ने समय की मांग का पूरा करके मानव-समाज के लिए एक महान् निर्माण कार्य किया है। गांधीजी ने अपने जीवन-काल में सर्वोच्च विचारवाच का जो प्रचार किया उसकी आश्चर्यवता उनके बलिदान के परभाव और श्री अचिक हा उठी। गांधीजी देश के विभाजन के विरुद्ध ये हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए बे निरन्तर प्रयत्नशील रहे तथा राजनीति को वे घम वर ही एक घम मानकर अलग व। उनके जीवन का एक-एक कार्यक्रम आध्यात्मिकता की विद्याल मिति पर आधारित था। वे मानवता तथा भारतीयता के प्रतीक व। उनका राम राज्य की बस्याना एक आदर्श राज्य की कल्पना थी।

गांधीजी अहिंसा तथा सत्य के बुझाठी व। उनके आशय में प्राप्त सत्य आर्षमा का उन्धारण हाता था। उसमें ग्यारह प्रती वर बूढ रहन की प्रतिज्ञा की जाती थी और वे ग्यारह वर इन प्रकार है — अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य व्रतमण्ड असीर-अम अस्वाह एवैव भय-वर्जन सर्व-वर्ग-ममानरन इरोठी-रपा बाबना तथा नम्रता। इन उक्त ग्यारह वरों का आधार भारतीय मय नियमों पर है। बीज धर्म तथा वंश धर्म में भी इन पर अत्यन्त कम बिदा मया है। त्रितीय महायुद्ध के परिणामस्वरुप संसार में अहिंसा का विवेता बाध-बरण पैदा मया। बीते ती प्रथम महायुद्ध के समय में श्री यह बाबना सोंपों में अंगूटिन हुई तथा प्रथम महायुद्ध के परभाव मग्नी तथा बगाठी का प्राबल्य इमी

बात का साक्षी है। व्यापारी वर्ग प्रवर्तन की प्रतीक्षा में रहता है। द्वितीय महा युद्ध के प्रवर्तन पर तो वस्तुएं एकाएक बहुत महंगी हो गईं। वस्तुओं के भाव घीरे जागृत हो गए। वस्तु का मूल्य गिर गया। लोगों की क्रम-सक्ति गिरती गई। व्यापारी वर्ग तथा ठेकेदार वर्ग में कमजोरी की प्रवृत्ति तथा प्रवर्तनबाधिता के वर्तन हुए। वस्तुएं तथा घात सामग्री बाजार से भीरे भीरे छिपने लगी तथा स्टोरियों ने घात-प्रवर्तन योजना करने प्रारम्भ कर दिए। सरकारों को परिस्थिति से लगे घातक नियंत्रण (कन्ट्रोल) का प्रारम्भ करना पड़ा। जो भी वस्तु सरकारी नियंत्रण में घाती वह सीधे ही मन्त्री से सृष्ट हो जाती। घात सामग्री तथा वैदिक प्रयोग की वस्तुएं नियंत्रित मूल्य पर मिलनी कठिन हो गई। मन्त्रिमन्त्र के लिए जीवन-यापन की विषय समस्या हो गई। प्रवृत्ति भी तथा रूप मिलना कठिन हो गया। मूंसफली के तेलों का प्रचार बढ गया। बंगाल का प्रवर्तन उषी समय की उत्तेजनीय बढता है।

कुछ वर्षों तक चोरबाजारी का बोलबाला रहा। घात भी चोरबाजारी बन गया है। बात-बात में घमन्त्र की प्रवृत्ति सेना लोगों का वैदिक कार्य बन गया है। सामग्री की पुकार का लोगों पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि व राजनीति के कार्यों में उनमें हुए व। वैदिक क्षेत्र में व इस्तोत्र करना उचित नहीं समझते व तो भी उन्होंने वैदिकता की प्रवृत्ति का प्रवर्तन ध्यान कीया।

व्यवस्था प्राप्ति के प्रवर्तन देश में घर्षण के प्रवर्तन को बहुत धेप मिल गया। पद-सौभुषण तथा स्वार्थ की भावना सब घीरे दिगाई देने लगी। वन तक जिस लोगो ने देश की स्वतंत्रता के लिए प्रवर्तन सब कुछ मुटावा या उनमें से प्रवर्तन घात प्रवर्तन घाने पर घाती सेवाभा का प्रवर्तन प्रवर्तन प्रवर्तन घाने के इच्छुक रहने लगे। इस प्रवर्तन होइ में कांम तथा घात प्रवर्तन में वैसे वानों का मन्त्री महसुसों का घोर प्रवर्तन वानों का तथा घाते समाने वानों का प्रवर्तन बढने लगा घीरे घात व मान वर्षों में प्रवर्तन यह हो लगी है कि वैदिक जीवन में बिना भूट बिना रिस्वन तथा बिना चोर-बाजारी के कार्य बनना कठिन हो गया है।

घातार्थ भी तुमसी न यह सब कुछ दमा तथा तुम घोर उनके मन में क की

उपन-युवन हुई । व धार्मिक कानाकण्ड स बहिष्कृत तथा बिल्ल हुए तथा उन्होंने अपने बर्तव्य तथा उत्तरदायित्व का ध्यान करके अपने अनुयायियों तथा मुनियों में विचार का प्रस्तुत किया और उनका यही विचार घामे चलकर अणुवती मंत्र नायक पान्दोक्त के रूप में जनता के सम्मुख आया । इन चार-पाँच रूपों में इन विचारवाच की सैकर भारत तथा अन्य देशों में काफी प्रतिक्रिया हुई । सभी नेता धार्मिक परिस्थिति से धरप हैं किन्तु सभी अपने अपने परिस्थितियों में अकड़ा हुआ तथा बिभ्रण पाते हैं । पाँचीजी के बलिदान के परचात् हुए सर्वोद्यम सम्मेलनों में भी कई प्रतिज्ञाओं में भी इन्हीं परिस्थितियों तथा बर्तव्यों का उल्लेख मिलता है । राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा धार्मिक विनाया भावे के साथ धार्मिक भी सुपरी की बैठों में भी इसी भावना के उदात्त मिलते हैं । इन चार रूपों में अणुवती मंत्र के जितने भी अधिवेशन हुए उन सभीमें अथ क सदस्या तथा कामकर्ताओं के समय के विधान नियमानुसंग तथा उनकी अपने-आपके प्रादेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रिय पक्ष पर राष्ट्रीय मन्थन किया है । अनेक अधुनतियाँ तथा मापकाँ ने इन सम्मेलन में बत लेते क परचात् अपने-अपने अनुभवों का वर्णन तथा उल्लेख किया उससे यह स्पष्ट पता चलता है कि अधुनत विचारवाच का निरन्तर प्रचार चल रहा है । मार्ग में अनेक बाधाएँ तथा प्रसाधन उत्पन्न हैं किन्तु मार्ग का इन सब परिस्थितियों का सामना करना हाया । अन्त में विजय निश्चिन्त है ।

वर्ग की महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसका समाधान भी अत्युत्तरी संघ उपस्थित करता है। सब अपने दायित्वों तथा साधकों से यह आशा करता है कि वैदिक जीवन में जोर-बाजारी विरुद्ध अत्यन्त धार्मिक का त्याग करना है। भारतीय समाज धन-संचय व्यापार की जोर-बाजारी धार्मिक के लिए बहुत बचनाम है। धार्मिक धर्म के अनुयायियों का बड़ा भाग यही समाज है। धार्मिक धर्म और उनके साधु व साध्वी-वर्ग की प्रेरणा से इस समाज में नव जेतना का उदय हो रहा है। धारकता इस बात की है कि जन जागृति उत्पन्न की जाए। मानव निर्माण के कार्यक्रम नैतिकता का अर्थनामा जाए। हमें परिष्कृत सम्प्रदाय की तरह-भङ्ग तथा भोज विनाश के जीवन को छोड़ना होगा धार्मिकता की धार अर्थनामा होना होगा। जीवन-निर्माण तथा जीवन-स्तर को उंचा उठाने के लिए धार्मिकता इस बात की है कि धार्मिक-निर्माण को धर्म धर्म का मानव-समाज अर्थनामा है। धार्मिक धर्म तुलसी के धर्मों में—धार्मिक-निर्माण के बिना न तो धार्मिक मिल सकती है और न सही धर्म में जीवन का स्तर उंचा उठता है।

मानव-समाज के लिए निर्माण यह धार्मिक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग—व्यापारी वर्ग, शिक्षक वर्ग, महिला वर्ग, सेवक वर्ग, शायक वर्ग, धर्मचारी वर्ग, मजदूर वर्ग तथा नवपुत्रक और धार्मिक—सभी में यह धार्मिक धर्म दी जाए। हमें विद्या की वर्तमान पद्धति को बदलना होगा। नवपुत्रकों से बढ़ती हुई धार्मिकता तथा धार्मिकता की भावना को धर्म रचनात्मक कार्य में लगाया होगा। महिला वर्ग में जागृति उत्पन्न करनी होगी। समाज की कुटीरियों को हटाना होगा। ये सभी कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनके लिए गण्य धर्मनिष्ठ धर्म सेवकों तथा साधकों की धार्मिकता है। हमारा धार्मिक है कि धार्मिक धर्म तुलसी के नवपुत्रक व धर्मों साधु-साध्वियों का एक-एक धर्म धर्म भावना के अर्थनामा में समाज है। जनता जीवन संयम का जीवन है। इन साधुओं और धार्मिकों में धर्म धर्म है धार्मिक है धार्मिकता है, धार्मिक विद्या है तथा है धार्मिकता व धार्मिकता नवपुत्रक। इनके होते हुए धर्मधर्म संघ तथा धर्मका धार्मिकता नवीन धर्म नहीं धर्मता। धार्मिकता है धर्म धार्मिकता पर धर्मता की।

घाज का दिन अशुभकृतियों तथा घामकों के लिए बिलोप रूप से घातम निरीक्षण का दिन है। हमें बर्ष भर का लेना-बोझा लेना है। हममें से जिन्होंने इत लिया है अबका मिश्रहोंने साधना की है उन्हें भी हुई प्रतिज्ञाओं को स्मरण करते हुए अपने भीतर यह विचार करना है कि वे कहां तक अपने उद्देश्य और जीवन में—इत-याजन के क्रियात्मक जीवन में मग्न हुए हैं। संघ और घातमोक्षण की सफलता सवस्त्यों की मर्यादा पर निर्भर नहीं करती अतः उनके व्यक्तिगत जीवन के त्याग तथा धारण पर बलमे से ही धांकी जा सकती है।

हम निराशावादी नहीं हैं। घाज तारा मंसार भौतिकवादी विचारवाण से मंत्रस्त हो रहा है। तथाकथित प्रगतिशील राष्ट्रों की प्रथा भारत की घोर घाघापूर्ण दृष्टि से देख रही है। भारत को अपने उत्तरवायित्त का ध्यान करते हुए फिर से प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति की घोर मुद्रना होना। घाघा ही नहीं बिरबाम है कि प्रत्येक अशुभनी इस अक्षतर पर घातम-निरीक्षण तथा घातम विन्तन की घोर प्रकृत होगा। घावस्कथा है इन घातमोक्षण को पर-पर पहचान की। इसके लिए कठिन परिश्रम करना होना घोर अपने जीवन को देना बराना होना कि बूझों पर बिना कहे हमारे जीवन का प्रभाव पड़े। यह हमारे लिए बरीसा-बाम है। परीसा में हम मग्न हों ऐसी मेरी हारिक कामना है।



अधुवत और समाज

श्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा

युग ने करवट सी है जमीन फटी कड़ियां उसमें समा गई। समाज का युग-युग पुराना छड़ा गया चौबटा चरमरा उठा। प्राचीन अर्थी व्यवस्थाओं के सिद्धांत मनुष्य ने एक धाराज हो बिड़ोह प्रारम्भ कर दिया। मानव ने सोचा किन्तुगी जिसे हुए बुलाव की तरह महकने लगी है। मुक्त ऐश्वर्य भोग-विलास, सब धारमी के इपारां पर नाचने लब। परिवर्तन के इस जलजसे का प्रभाव धारमी के दिन धीरे दिमान पर बुरी तरह छा गया। धारमी तरहकी बी बीड में कमर बसकर बौड़ने के लिए तैयार हो गया। जमाने के बदलते हुए रविये ने उसे बताया कि धाज जमाने के अनुसार न बसने वाला इन्म न इन्सान नहीं जानकर है। धारधवार एक डॉम है, धम एक डकोसमा है, मूठ है। धम मूठ, कपट धोका, विरामपाठ सब जायज हैं, सब उचित हैं। दुनिया में कोई भीज पाप नहीं। भयवान धारमी का धम माध है, धोये की बरना है। भगवान धाज म्मान है, उमका पैसा है, उसकी बुद्धि है। इम्मान अपनी गति और सामर्थ्य के बस पर मधमुध भयवान की तरह पुजाने लगा। उमका तरहकी पमन् दिमाप जमाने की राह में मण बछड़े की तरह कुत्तारों भरने लमा धीरे दृष्टी धीरे मांघ का बना इम्मान सधमुध ही भगवान नाम की भीज को मिग कर गुरु जयवान बन बठा। भयवान की कुर्ती से हटा कर लुद उबके स्थान पर बँटने की तैयारी करने लमा। जमाने जब अपने धारकी टटोसा ता, धममव दिया कि उसकी बुद्धि इस दुनिया के मुराबसे में एक नई दुनिया बना देने के स्वप्न देखने लगी है। जिसके लिए वह धाकाम पर मए जाँद और मूरच उपागमा। यह हवा

यह बरमी यह प्रकृति सब बसत कर नएँडय से नएँ साबे में डाल कर वह इब बुनिया में ईबाद करेगा धीर उसका ईबानी हिमाग हूर सूरत से बिजय को घपने करधों में डालने को सफर उठा । बिज्ञान बीसी धबुसुत शक्ति का घाबिष्कार करके बत्र पूसा नहीं सुमाया । यह उसका प्रबम प्रयत्न बा जिसमें उसने घपनी सारी शक्ति को मगा दिया बा । घावमी की ताकत से हुनी चौकुनी घठ्बुनी लम्बिया बटोर कर उसने मझीन जेसी एक नई बीज का घाबिष्कार किया । ससार उसका यह करिष्मा भौषिकी मिबाहों से देखता रह गया । संकड़ा-हुजारे घावमियों का काम एक मझीन करने लगी । हुजारों घावमी बरोजगार हो गए । साखों घावमियों के मुँह की राटी का कीर झीन लिया । मँकड़ों सिद्धों के माप का सिन्धूर पुछ गया ।

घावमी घानी बिजय पर मुस्कराया । उसने सोचा कि निविचन ही मंभार धीर बिन्दवी की एक बहुत बड़ी चाबी उसके हाथ में बा गई है । यह जीत उसकी धबुसुतपूर्व जीत है । लेकिन यह वह नहीं समझ सका कि इन्तान होकर उमन इम्सानियत का मत्ता पोंट दिया है । लुब का बर भर कर हुजारों इम्सानों को उमने रोटी का एक-एक टुकड़े के लिए मोहताज बना दिया है । बिजय के लक्ष में कुत प्रयत्न के अभिमान में बुर इम्तान इम्तान की वह कदम शास्त्र सिपनि नहीं देन सका । इमन फिर इच्छा किया कि घाव की बार फिर वह घावनी लक्ति का बरिष्मा बिसाणया । घानी तरु किटी के हाथ में न घा सन्ने बानी बिगरी धीर मीठ को वह घाने हाथ की बठुतमी बना कर खेया धीर उनका इमरा प्रयोग एटनबम धीर हाईड्रोजन बनी के रूप में हुया । बड़ी निदरगा धीर नृसंगता से उमने घावमी की बिन्दवी से गिलबाद करमा मुक कर लिया । न्मानों की साणों पर बड़ कदम रगता हुया ठगामी के घाबे बना । परन्तु घावमी ने घन्धर पेंटा रगता माप घबिचत ममा तत घानी यह हुदमा न देन सका । घावमी ने देगा कि यह उमनी ईबाद की हुई मझीन ही उमनी सय की बीज का कारण बन गई है । यह एटमबम धीर हाईड्रोजन एक बिजनी तलरगा ने इमन इम्सानों के प्राणों के माप मीन मीन मचने है । उमनी ही न्माना न यह उमनी सय की बिजनी की जी तहन

नहस कर बासने की क्षमता रखते हैं तो धारमी अपने ही प्रसन्न ही चाहत अपनी ही विजय से पराजित और अपने ही सब संकुची आत्मा के उस सरय की पीतल मयूर झाड़ में एक पल बैठ सकने की व्याकुल हा ठठा। वह पुन उठी प्रजात अक्षि ईश्वर की धार मुकने लगा जिसको कुछ दिन पहले अपनी विजय के नये में उसने उपेसा स बुर फेंक दिया था। धारमी अपने वर्तमान जीवन से जालु पाने का छापटा ठठा। जून देखकर जब उसका जून लौला नहीं उसका जून बढ़ने की वजाय मय से गसने लगा। तो उसे जून की कीमत माधूम होने लगी। वह अहिंसा का धायय लेने को दीड़ पड़ा। उसने बेजा कि इन्धान का हृदय प्रसन्न और हिंसा से नहीं बस्कि अहिंसा और स्नेह से पीता जा सकता है तो वह अपनी मूस पर परधाताप के धामू बहाने लगा।

ऐदरम ब योग विसास न जब उनके सुन्दर शरीर को लोखला दाम्बिहीन और भौंड़ा बना दिया और धसमय में ही उसे मौत की खाई में अकेल दिया तो उसे सबबगिना और नीतिबता की कीमत माधूम होने लगी। जब उसने देखा—औरत की बाह्य कमनीयता एक सिपा-मुठा भूटा इतिम सौन्दर्य मात्र है ता वह हृदय के वास्तविक सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए बिकस हा ठठा। बिकृत प्रसीमित इच्छाओं का विस्फोटीकरण जब उसकी अङ्ग लोयने लगा तो उसे उगह सीमित करने की फिर लबार हुई। इन्धान बाह्य धारम्बर रूपस आत्मा की पवित्रता स मठबग्न करने को जताबसा हो ठठा। वह समझ गया कि जब तक किया गया उसका अपनी शक्तियों का हम्म केबल एउ उसकी मटकन की उसका वह गर्व भूटा या क्षायता या नहीं ता उसका अस्तित्व इस संसार में एक पीटी के बराबर भी नहीं है। उसकी यह सब इजादियां उसके लिए कुछ पाने को पावड़ा लिए बँटी हैं ता वह धर्म की जय जयकार करने लगा। धारमी नास्तिक में धारितक हुये लगा।

धम धार्यान्त में उनके भाग क्षेत्रा धारम्ब दिग। मान्यता का रूप जो कुछ समय पहले उगकी धगावधाना और धक्तानता स बिकृत हो यमा का बारे धीर पुन अपनी रबाभाबिक धवस्था स धान गया। परम्पु १०० वर्ष की गुमायी दम्बिनी सम्पता तथा उगकी रबम की निर्मित परम्पराओं ने उसे

घर-घर से इतना मार दिया था कि वह पुर्युङ्गणेण घानी उस स्थिति में नहीं लौट पाया। घात्र केवल २ प्रतिघात व्यक्ति ही ऐसे हैं या घपनी स्वाभाविक घवस्था में घा पाए हैं। ३ प्रतिघात घभी भी उसी घज्ञान धीर घत्वकार के घुनघुनीया में बरकर बाट रहे हैं। घात्र भी बिनाघ घीर बरबाबी का है जब घनाए हुए हैं जिनके बा' उनकी जिन्दगी घाबिठी घांस छोड़ देगी।

धीर घधुर प्रवृत्ति के व्यक्ति बड़ने मसते हैं तो मैं स्वयं कोई न कोई घबनार है घीर घधुर प्रवृत्ति के व्यक्ति बड़ने मसते हैं तो मैं स्वयं कोई न कोई घबनार लेकर घुष्ठी पर घाता हूँ घीर हम घबन घीर घाघ के घत्वकार को मिटाता हूँ।" उनी प्रकार घधुषज के प्रवर्तक घाघार्य श्रीधुसनी का घाबिर्भाव मालबता के उनी बिहृत रूप को स्वाभाविक घबन्धा में माने को हुआ है। घधुषज घाघोमन द्वारा घात्र तो वह घीनों के हृदय में जान घीर बोध की मघाम जला रहे हैं। उसने हजातों घाभी व्यक्ति घात्र उचित मार्य या चुके हैं घीर हजातों का यह प्रघास स्वप्न बनकर गया जहाँ उनके मार्ग की घीर संकेत कर रहा है। मस्य घहिमा जान साधना तपस्या घधुषन रूपी वृत्त के घे फल हैं, जिन्हें गाकर इमान दमान न रहे कर देबता बन जाता है घीर मधुष्य घपनी कृत्रिमता को घा' स्वाभाविक घबन्धा में घा जाता है।

माने घापने घाहत इमान सत-बिदान हा चुका है। दुनी घीर प्रनाशित होकर घात्र वह घालि घीर मस्य की घीर में घटन रहा है घीर घधुषन भी बघाम घात्र भी उघारी घटन की मघाजि के लिए मसते कर रही है। इसके बाद फिर जान का प्रकाश होमा। संमार मस्य घहिमा, मघाम घीर तपसा के पथ पर बनकर घपने निबिष्ट न्यान पर पत्रब मीमा।

—श्री शीलनन्द 'सहित्परत्न'

नीति विवेक और सदाचार जीवन के प्रहरी हैं जीवन के उत्तम हैं। इसलिये जब मानव समाज में अनेककृता विषमता और धोपण व उत्पीड़न की भावना और विमिश्रा के रूप में छा जाती है तब हमारे देश के ऋषि-महर्षि एवं साधु-सन्त उन्हें दूर करने के लिए तत्त्व चिन्तन करते हैं और वे अपने चिन्तन की सहायता से समस्याओं का समाधान कर मानव-समाज को नई दिशा की ओर उत्प्रेरित करते हैं। मन्त्रद्रव्या और तत्त्वदर्शी ऋषि मुनियों की परम्परा अपने देश में अक्षुण्ण रूप से सतत इस काम को करती आ रही है। आज भी कर रही है।

जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण उच्छ्वेसवादी दृष्टिकोण है और बहुधोपण भावना पर आधारित है। जब मनुष्य स्वर्गों की सुख-सुविधा का आश-मग्यत्व का बर्ष प्रबर्ष का विचार छोड़कर देह का उपासक बन जाता है तब उसके भीतर खूबे वाली आत्मा सुषुप्त हो जाती है और वह वह का मूत का द्रव्य या मीटर का उपासक बनकर अपने धुत्र महम् के वाहन-योपण को ही अपना मद्य बना लेता है। फिर समाज में सीमा म्पटी और आपा-भापी के बातावरण के कारण और असन्तोष छा जाता है। मनुष्य-मनुष्य को भाई-भाई की अपना सुरम समझने सपता है और वह असार नरकवत् प्रतीत होने लगता है। ऐसी ही अवस्था में पुराने सत्तों का आचरण और सदाचर सम्बन्धी सिद्धान्तों का पुनर्जन्म हुआ करता है।

भारतवर्ष के दासता के युग में ही हमारे ऋषि-महर्षियों में महाशुल्य और ब्रह्ममार्थों ने अपने आत्म-संयन के द्वारा सत्तों का साक्षात्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। परमहंस श्री रामकृष्ण ने बायी-बायी से हिन्दुत्व इसान और

ईमात्रपत का सम्पात करके सभी धर्मों के पीछे छिप हुए एष्य का उद्घोष करत हुए कहा था—सभी धर्मों का समन्वय होना चाहिए। उन्हीने विविध धर्मों की उपामना-गठति घोर उत्रके तत्वों का तटस्थ बुद्धि में बिहतेपण्य करके सभी धर्मों के प्रति घईत बुद्धि घोर भडा का भाव जबापा। उनकी यह कैवल भावतव्य नौ ही नहीं बिरच को बहुत घडी देन को। परम्पता के उस युग में जब हिन्दु मुस्लिम बौद्धमत का मडबापा जा रूखा था परमहंस रामहृण्य की यह भावना मनो मध्ययुगीन कठिबारिता घोर कट्टरता पर मानवता की बिरचप थी।

घोर नब घाये घरबिद। घरबिद क घामने भारत की स्वतन्त्रता का प्रथम मोण था पृथ्वी को स्वय बनाने का—पृथ्वी के स्वर्गीकरण का उद्देश्य ही प्रथम था। उन्हीने पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना की। उन्हीने हुमें बनसाया कि तुम त्त धर मन की सीमा से बुद्धि के बरे से ऊपर उठो। तुम घाप्यात्मिष्ठता का घनत्रव करते हुए बुद्धि के स्तर से ऊपर उठकर घामितानम वा निर्माण करो। उनका कल्पना था कि त्रैल मु। या इष्य मे जीव जीव स बुद्धि या मानम की उत्पत्ति हुई है, बेंम ही मानम में घानि मानम का बिकाम हागा। घतिमानम क स्तर पर पशुचकर मनुष्य का बह समझने-ममझाने की जरूरत नहीं रह जायेगी कि हम सब भाई भाई हैं मनुष्य-मनुष्य समान हैं सभी एक हैं। उस समय बह हम तव्य का स्वर्ग घपने जीवन में सासाकार करेया। उमका घाचरण स्वत इत मर्य को घपने बरिच से प्रसूष्टि करेगा घौर तब बैतना के स्तर पर उतरने बासा घति मानम—जी नीरते या इवबाज का महामानम—दरबय मानम नहीं बरिच के बल पर घति मानम के स्तर पर पशुचा हुया मगमानम होया समान सेना के हाथ पृथ्वी का स्वर्गीकरण करेया। बह पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की बेप्टा में नीन रहेगा बेर-बिरोप घौर पाररपरिच बटता का स्वर्ग घामन हो जाणवा। राग-द्वेग से ऊपर उठकर तन्त्र्य बुद्धि य घात्म-बिघनेवण करते हुए हम प्राच भूमि पर बिरचर र्छित मन में जब मनुष्य समान-मेवा में उतरेगा सभी दुनिया के दुर्गों मे बिरचर होना। सभी मनुष्य की सामूहिक मुक्ति का मार्ग प्रथम होना।

इस सबल भावनाओं को घपने बरिच में घात्मसाधु करने हुए मनुष्य क

पाषाणिक मूर्तों का पाषाणिक के द्वारा नहीं मानवता के द्वारा धमन करने का मार्ग प्रशस्त करने वाले और पूणा विद्रोह एवं कटुता को जगन्नीयन की निम्नानी बतलाने वाले महात्मा गान्धी का प्राबुर्भाव हुआ। उन्होंने बतलाया कि अहिंसा सत्य अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को जीवन में उतारना होगा। प्रतिपक्षी की शोषों के ऊपर अहिंसक शक्तियों से विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। बीरता मारने में नहीं मरने में भी नहीं, धरने मरने को बस में करने में है और धरने तथाकथित विरोधी के हृदय को जीतने में है। महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह का प्रवर्तन किया—बीरता को नये रूप में उपस्थित किया।

इन्हीं महापुरुषों के साधना मार्ग पर चलकर भारत स्वतन्त्र हुआ। भारत ने विश्व को पकड़नील का मारा दिया। सत्यमेव जयते का अर्थमोचन सुनाया। संसार में उसकी कीर्ति व्याप्त हुई। विश्व विश्व को नव मानवता का मन्त्रोत्तर मिला।

यह सब होते हुए भी देश में विषमता और अनैतिकता का बातावरण चरम सीमा पर पहुँच रहा था। अनैतिकता का बातावरण में ठेकगाने की भूमि समस्या विकट हो चमी की और देश को धरने ही भीतर प्रतिउन्निता का सामना करना पड़ रहा था। देश की मर्यादित स्वतन्त्रता सतरे में थी। ठेकगाने में भीतर भीतर असन्तोष की धारा बहक रही थी। इस पूष्भूमि पर मन्त्र विनोबा का झापमन हुआ। देश में इस छोर से उस छोर तक भ्रमण की सहर ब्याप्त हो उठी। सब भूमि कोषास की का मारा गुंज उठा। भ्रमण सम्पत्तिवान बुद्धि बान और जीवनदान के मए-मए उद्भोप सुनाई पड़ने लगे। मत्ता-ममक राजनीति के स्थान पर सोष्नीति का आविर्भाव हुआ।

फिर भी बातावरण में निराशा छाई थी। अनैतिकता का बासबासा था। पन मनुष्य की छठी कर्मोत्रिय समझ पाम सगा था। येन केन प्रकारेण गुंज सुविधा और सत्ता-सम्पत्ति को नुदाने में लोम लय गए थे। जिन्होंने कभी अपबान् महावीर की काणी सुनी थी, जिन्होंने मीतम बुद्ध का उपदेश सुना था और वहाँ रामकृष्ण परमहंस धरविन्द और महात्मा गान्धी के विचार गुंज चुके थे।

उत्त समय कीरों कीर त्यागियों के उद्वेग के चिह्न पर सके हों की वंशियों की तरह जीन बरेताम्बर सेषाम्भी मुनियों की टोली भाचार्य तुमही के नेतृत्व में संयम-समु-जीवन्तम् का उद्वेग करती हुई उठती । लोगों ने विस्मय विस्फारित नेत्रों से इन पंच महत्प्रती मुनियों को देखा । एक-दो संख्या में नहीं छोड़े छोड़े ही संख्या में जीन मुनियों एवं साधियों की टोलियां बुझपट्टी बाले रजोहरण घोर मित्रा-वाक मिष्ट उमठे निष्ठा गांन रही हैं । जो मुझे निष्ठा को वन मुझे नहीं चाहिए, मुझे उम्मान भी नहीं चाहिए, मैं तो बस व्यवहार का उद्वेग बुझना भी संख्या नहीं समझता । घरे पदलों । मुझे कूब की ही कौन कड़े गूत की मासा भी नहीं चाहिए । मैं तो विषं तुम्हारे दुर्वृत्तों की धर्मविज्ञा की तुम्हारे प्रकाशों की निष्ठा मांने धापा हूं । जो, पर दो मेरी मोती ।

जीन बहु निष्ठा सेते सपय धर्मवर्षाति से मरी हुई उनकी धार्मिक उसी प्रकार बचकनी है जैसे जून की धार्मिक मोक्ष पाकर घोर व्याधे की धार्मिक पानी पीकर तृप्ति से बचक उठती है—जैसे बोटों की कटारों को देतकर उम्मीदवार की धार्मिक घोर जैसे वान-पत्रों को पाकर सन्त निगीबा की धार्मिक बचक करती है तथा जैसे जंपल के बरदर धाई हुई तीनों की धार्मिक बचक बचक की पाकर बचक उठती है ।

यह है धर्मदोषों का पुनर्जन्म यह है संयम-समु-जीवन्तम् का पुनर्जन्म । तीर्थकरों ने धार से हजारों वर्ष पहले महाप्रती घोर धारुणों का उद्वेग किया था । बहु पुत्र भी कुछ इसी प्रकार स्वतन्त्रता का पुत्र का विचार-वाग्नि का पुत्र या मोक्षदा का पुत्र का घोर साम्प्रती विनाशिता का पुत्र का । धार के मोक्ष-वाग्नि की तरह उन पुत्र में भी उद्वेगकारी धार्मिकों ने विचारों का उद्वेग बना रखा था । विचारधाराओं की टकराव से उस पुत्र में भी ऐसा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था—जैसा धार सुनाई पड़ रहा है ।

धार के पुत्र में धर्मविज्ञा का बोलबाला है जीन राव के घर में धर्मविज्ञा विनाशिता के घर में धर्मविज्ञा होकर बनता—वेध-वेध की जनता न केवल उद्वेग-वाग्नि पर जानता है धर्मिक धर्मदोष घोर धर्मदोष धर्म को ह्रास में लेकर

दुनिया बिम्बस के कगारे पर खड़ी है। एक छाटी-सी चित्तगारी भी इस परवाणु बम रूपी बाबरलान मं पड़कर प्राणियमत् का सहार कर सकती है। आज जयत में सर्वत्र बंद धीर प्रतिभोध का बातावरण व्याप्त है धीर भोग भगवान् महावीर की 'मिति मे मच्च भूएसु, बेरं मन्म न केखई' अर्थात् ममी जीवों के प्रति मेरी ममी भावना है। किसीमे मेरी मनुता नहीं है, इस बाण्णी को भूलते पा रहे हैं।

उपयुक्त बातावरण में ठीक समय पर धीचिरय-मनीचिरय की सतत भावना में तीन पंच महाशर्तों का पालन करने वाले भवमान् महावीर के धनुयायी वीनाचार्य भी तुलसी के भैतुत्व में धनुशर्तों का पुनर्जन्म हुआ है। धनुशर्तों के सिद्धान्त इतने पुष्ट धीर इतने शक्तिशाली हैं कि पिछले ढाढ़ हजार वर्षों के धाबी-यानी से भी वे बिलप्ट नहीं हुए। महाकाय की छाती पर पांच रोपकर सजे होने वाले गदवर छरीर के बेरे में धाबड़ से पांचों सिद्धान्त व्यक्ति को 'अणोरणीमान् महतो महीयान्' की परिभा से गौरवाञ्जित करने वाले हैं। इनका उद्बोध हमें आज इस कर्म कोसाहस्रमय युग में सुनाई पड़ रहा है जब पूर्णिमा का चांद हमारे कबि सेखकों के लिए चाबल की पीठी की तरह मामूल पड़ने लगा था जब जगता हुआ सूरज तबे मे निकसी हुई मास-मास रोटियों की तरह प्रतीत होने लगा था धीर जब आकाश के प्रह-नक्षत्रों में भी बडकर हमें चारी के सिन्के धाकपक दिखसाई पड़ने लगे थे जब हमें यह सुनाई पड़ने लगा था कि धर्म धरैम है सारे संसार का इतिहास बर्न-बर्न का इतिहास है धीर समस्त कलाएं, सभी पुरपार्श सूचक कृतिपां व्यक्ति के अमलान के भीतर क्षिपी हुई कुप्यधों की प्रतीक हैं। उम समय उम इव धीर कुप्याधों से रहित अमलतप्य भीत की तरह धाबेग रहित निर्मन्त्र हृदय वाले धाचार्य तुलसी के मानम में वो धनुशर्तों के डाण वीचन के भीतर उपाति मे उपोति उपाते का मधुगुण मानवता को महा मुक्ति के पथ पर ले जाने का संकल्प उठा है, वह मानव की जय-यात्रा का प्रतीक है।

जिस मान्ति महाराजा उदयन प्रधान महामेन धीर भगपापिपति बिबमार के मुग में इन शर्तों का उद्बोध सना था उनी प्रकार आज भारत फिर मे

उस समय बीरों घोर त्यागियों के राक्षसपाल के चित्त पर सकेर होंसों की पंक्तिओं की तरह जैन शैलान्धर शैलान्धरी मुनियों की टोती आचार्य सुनवी के नेतृत्व में 'संयम' धनु जीवनम् का अवलोकन करती हुई उठती। सोवों ने विस्मय-विस्फुरित नेत्रों से इन पंच महापती मुनियों को देखा। एक-दो सख्या में नहीं साड़े घड़ सी की दरया में जैन मुनियों एवं साधियों की टोमियां बुधबदली बांधे खोहरण घोर मित्रा-पाप लिए उनसे मित्रा मांग रही है। वो मुझे मित्रा हो बन मुझे नहीं चाहिए, मुझे सम्मान भी नहीं चाहिए, मैं तो जप जपकार का उद्बोध सुनना भी शक्य नहीं समझता। घरे पपलों। मुझे पूत भी तो कौन बड़े शून्य की माता भी नहीं चाहिए। मैं तो सिर्फ तुम्हारे दुर्गुणों की घनेतिवृत्ता की तुम्हारे प्रमादों की मित्रा मांगने आया हू। सो भर हो मेरी भोली।

घोर यह मित्रा लेते समय धनुष्योत्त से भरौ हुई उनकी घाँसे जड़ी प्रकार चमकती है जैस मुझे की घाँसे घोजन पाकर घोर व्यासे की घाँसे पानी पीकर सृष्टि से चमक उठती हूँ—जैसे बोटों की कतारों को देखकर समीरवार की घाँसे घोर जैसे राज-पनों को पाकर सप्त विनोबा की घाँसे बनना करती हूँ तथा जैसे जयल से भरकर घाई हुई पीपों की घाँसे घने बज्रों को पाकर चमक उठती हूँ।

यह है धनुष्यों का पुनरंम्य यह है 'संयम' धनु जीवनम् का पुनरंम्य। तीर्थंकरों ने धार से हजारों वर्ष पहले महापतों घोर धनुष्यों का उद्बोध किया था। वह धुप भी कुछ इसी प्रकार स्वतन्त्रता का धुप या विचार-क्रांति का धुप या जोषराय का धुप या घोर सायन्धी वितासिता का धुप या। धार के भोग धारियों की तरह उस धुप में भी उद्बोधवादी धारियों में विचारों का हुरदय मना रहा था। विचारवादाओं की टकराहट से उस धुप में भी पेशा कोसाहम मुनाई पड़ रहा था—जैसा धार मुनाई पड़ रहा है।

धार के धुप में घनेतिवृत्ता का बोतबाला है भोग राग के मर मे बेईमान, वितासिता के मर में मदान्ध होकर जनता—देख-देख की जनता न केवल रस-क्रान्ति पर आगता है बल्कि धनुष्य घोर परमानु बन को हाथ में लेकर

—भी बन्धुवसार सिंह बी० ए०

धार्मिक युग में भौतिकवादी मध्यम का साम्राज्य ही सर्वाधिक गतिमान है। हमारा दृष्टिकोण ही भौतिक हो गया है और हम संसार की सभी बन्धुओं का मुख्यांकन भी इसी मानदण्ड में करने लगे हैं। समाज का बाह्य जगत बड़ा ही नूतन दृष्टिकोण से हो रहा है। मानव ने विज्ञान के बल से अनक विजय प्राप्त की है और अब काल तथा स्थान पर भी हमारा प्राधिपत्य स्थापित हो गया है। अणुबम का निर्माण हुआ। संसार की सबसे दुर्गम और खजम जोड़ी एबरेस्ट पर हमारी विजय-यताका सहारा रही है। हम वायु में उड़ सकते हैं। पानी के बहा को भीर कर अपनी समीप्ट मिडि कर सकते हैं। मानो-हजारों कोशों की दूरी पर निकली हुई बाणों का प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु अपने अन्तर्मन की अवस्था से अन्तर्मन है। वहां एक बहुत बड़ी हलचल और घणान्ति है कोलाहल मचा हुआ है किन्तु उम पर सोचने के लिए समय हमारे पास नहीं है। इसका मूल कारण है कि इन मानव-समाज के पास मस्तिष्क को छोड़कर हृदय या आत्मा नाम की बन्धु ही नहीं रह गई है। हम निगाय करते हैं मुष्क लनों के आचार पर और हृदयमूर्तिना को ही मनुष्य की महानता का परिचायक मान बैठे हैं। इन मुष्क घणान्ति रचनपाठ अनाचार स्पमिचार और नृगिनानुच मानव के पामबिक व्यवहारों में स्पमि की मानपता कराह उथी और अब उसे प्राण बाहिए, अथवा मानव अपनी सीमा वा अतिव्यय कर शक्य बन जायेगा और समाज की बन्धी-बन्धी दान्ति भी अस्मीमून हो जाणगी।

गमक विश्व का मानव प्राय दो दिशाओं में बटकर एक संविस्वन पर गता है। एक यथ और रक्षणा के बध में है ता दूसरा विश्व-दान्ति के लिए

यह बाली सुन रहा है। तीर्थकरों की परम्परा को जीवित रखने वाले जन मुनि आज कह रहे हैं—अमृतों का पासन करते हुए महाशक्तों की घोर बसो। सभी जीव तुम्हारे मित्र हैं। तुम्हारे अमृत तुम्हारे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर ही तुम्हापि अतीविका में रिक्तलोधि में परिग्रह में और अग्रहण्य में विधे हैं।

तुम उठो तुम जाओ इन कर्वाणों को—काम-क्रेष मद भोग और परिग्रह को जीत कर तुम विजयी बनो। तुम जड़ नहीं चेतन हो। तुम पुद्गलों (परमाणुओं) के समूह से निर्मित इस सरीर के भीतर आबद्ध अपनी अन्तःस्था की आवाज को सुनो। तुम जागो और वे दो मेरी ओसी में अपने दुर्धसनों का दान। मैं उन्हें बचना दूंगा। तुम उन्हें जन्म-जन्मान्तरों से बचो या रहे हो। इनके बोध के नीचे कुचलते कहते रहे हो। उन्हें छोड़ते ही तुम्हापि आत्मा हल्की होकर उभर उठेगी। तुम महान् हो। अपनी महामता को पहचान कर तुम वास्तविक अर्थों में महान् बनो।



—श्री बन्धुसहाय सिंह जी० प०

प्राथमिक युग में भौतिकवादी मन्थना का साम्राज्य ही सर्वाधिक गतिमानी है। हमारा दृष्टिकोण ही भौतिक हो गया है और हम संसार की सभी वस्तुओं का मूल्यांकन भी इसी मानदण्ड से करन लग गए हैं। समाज का बाह्य अंगत बड़ा ही नूतन दृष्टिकोण हो रहा है। मानव ने विज्ञान के बल से घनक विजय प्राप्त की है और अब कास तथा म्वाल पर भी हमारा प्राधिपत्य स्थापित हो गया है। अणुबम का निर्माण हुआ। संसार की सबसे दुर्गम और घबराव भोटी एबरेस्ट पर हमारी विजय-यज्ञाका महारा रही है। हम वायु में उड़ गकने हैं। पानी के बल को चीर कर अपनी घमीष्ट मिडि कर गकते हैं। लाखों-हजारों कोशों की दूरी पर निकली हुई आणी का धरण कर गकते हैं, किन्तु अपने अन्तर्गत की घबस्ता ने घनमित्त है। वहां एक बहुत बड़ी हनपस और घमान्ति है कोलाहल तथा हुपा है, किन्तु उन पर सोचने के लिए समय हमारे पास नहीं है। इनका मून कारण है कि हम मानव-समाज के पास मस्तिष्क को छोड़कर हृदय या आत्मा नाम की बन्तु ही नहीं रह गई है। हम निर्गल गकते हैं गुल्क लों के आसार पर और हृदयशीलता की ही मनुष्य की महानता का परिचायक मान लेते हैं। हम मुठ घमान्ति रकनपाठ अनाचार, व्यभिचार और नृगसतादुष मानव के पासविक व्यवहारों से व्यक्ति की मानपता करह बड़ी और अब उसे बाणु चाहिए, अम्यया मानव अपनी सीमा का घनिष्मण कर दानव बन पायगा और समाज की बची-भुची घान्ति भी अम्भीकून हो जाणी।

ममघ बिन्द का मानव आर दो विमार्गों में बटकर एक संघिस्वम पर गटा है। एक पद और रकनपाठ के पद में है तो दुनरा बिरब-आग्नि के विग

मनीरब परिचय कर रहा है। किन्तु यह तो एक सुनिश्चित सत्य है कि मनुष्य धार्मिकप्रिय भीव है धीर जब वह बुद्ध की विभीषिका से बर-बर कांप उठा है। मनुष्य ने मानव की शक्ति का परिचय प्राप्त कर लिया है धीर जब उसकी ईनी शक्ति प्रबल हो रही है।

मानव की इसी धारणा की अभिव्यंजना धार्मिक के विभिन्न नैतिक धारणोत्पत्तियों में भी हो रही है। मनुष्य धार्मिक पशु नहीं है, उसमें विचारने की शक्ति है धीर इसी धारणा के फलस्वरूप संसार के मनीषियों धीर धार्मिकों ने नैतिक पुनर्गठन धार्मिक धीर सर्वोदय धार्मिक धारणोत्पत्तियों का सूत्रपात किया है। इसी धारणा में बाध हुए धीर इसी बेस में बुद्ध धीर महावीर जैसे धर्मों का धार्मिक हुआ। जब सारा विश्व इन महान् धारणों की विचारधारा से प्रभावित हुआ है तो भारत में इसकी महार का प्रस्फुटित होना कोई अस्वाभाविक नहीं।

भारतवर्ष से विदेशी सत्ता का प्रस्थ हो गया। स्वतन्त्रता का स्वर्णिम प्रभात हुआ। सभी के हृदय में मनीर धारणों का संचार हुआ। किन्तु धार्मिक बहु धारणा का पीडा कुम्हलाया-सा जा रहा है। निराशा की धारणा ही धर्म-जीवन में प्रबल होती जा रही है। धार्मिक ऐसा क्यों? चूंकि समाज में अतिम विषमताएं हैं धीर एक पर एक समस्याओं हमारे सामने मुंह बाधे सर्बा बड़ी रहती हैं। समाज से धोपल का प्रस्थ करना तथा विश्व में धार्मिक की स्थापना करना धार्मिक के मानव का प्रमुख मक्य है। उसकी उपसधि के हेतु ही हम सत्यप्रत्यय करते जा रहे हैं धीर धार्मिक-विश्वास के साथ धार्मिक हों तो सत्यता हमारे पैर धूमैनी।

व्यक्ति के जीवन से धार्मिकता धीर नैतिकता का तिर्योहित हो जाना ही उपरोक्त धारणोत्पत्तियों का धर्मदाता है। मनुष्य धार्मिक क्यों है? चूंकि उसने मनुष्य पर विश्वास करना छोड़ दिया है। इसका कारण है कि हममें सदा-चार के बदले धार्मिक, सत्य के बदले धार्मिक ईमानदारी के बदले बेईमानी धीर धार्मिक की बहल बुवाई धार्मिक है। प्रत्येक व्यक्ति निवेदात्मक रूप से धार्मिक है। यहां बुवाई वहां बुवाई यह धीर, यह बेईमान। कोई भी धार्मिक कभी यह नहीं धार्मिक कि स्वयं धर्ममें धार्मिक धार्मिक धीर पड़ है। यदि धार्मिक-धर्मन धीर

आत्मसोचन करें तो व्यक्ति को पता चले कि वह कहाँ है और कितना गिरा हुआ है। राष्ट्रीय जीवन में सत्य और अहिंसा की भावना के अभाव में ही रामराज्य के स्वप्न को मूर्तरूप धारण नहीं करने दिया।

भारत की भूमि दार्शनिकों और चिन्तकों की भूमि रही है। इसे जगद्विभूत बनने का सीमायु प्राप्त है और सांस्कृतिक क्षत्रों में इस देश ने सदा ही विश्व का मन्तव्य किया है। जैन-धर्म का भी विश्व-दर्शन में एक विशिष्ट स्थान है तथा बार्मिक इतिहास एवं राष्ट्रीय निर्माण में इसने महत्वपूर्ण योग दिया है।

जन शैलाम्बर तैरापची संप्रदायक के आचार्य श्री तुमसीमखी ने भी विश्व के समस्त एक महीन दर्शन प्रस्तुत किया है और मानवता को एक नया मार्ग दिखाया है। अणुवती संघ की स्थापना उनके गम्भीर अध्ययन सार्विक जीवन तथा ठोस अनुभव का परिणाम है। यह जीवन-सुद्धि के आन्दोलन का प्रबल संघ नाम में प्रति लक्ष्य किन्तु काम में प्रति महाम् है। इसका उद्देश्य सामान्य मानव के नैतिक स्तर को उच्च बना उसे पाषाणिकता के गर्त से निकाल कर महामानव के पद पर आसीन करना है। संघ के विचार प्रचुर प्रगतिशील तथा पूर्णतः आतिथारी हैं। सम्भवतः पहली बार एक बार्मिक संस्था द्वारा ऐसे धर्म का मूलपाठ हुआ है जो साम्प्रदायिकता की संकीर्ण परिधि से सर्वथा मुक्त और रुढ़ि-विहीन है। इसका द्वार किमी भी मनुष्य के लिये उन्मुक्त है और उसके विकास हेतु उसका सर्वथा समित्वन किया जा रहा है।

संघ के नियम

संघ के सब नियमों की संख्या तो चौदासी है, किन्तु मुख्यतः इसके पाँच ही भाग हैं—अहिंसा सत्य अचीर्य अज्ञान्य और अपरिग्रह। इन पाँच तत्त्वों की उपासना का ही सदस्यों को पती बनना पड़ता है तथा इसीको स्पष्ट तथा सुमम बनाने के हेतु इनके इतने भेद कर लिए गए हैं। जब यदि इन अध्यायों के एकाच नियमों का अममोचन करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे कितने व्यापक और राष्ट्र-निर्माण में कितना सहयोग देने वाले हैं। अहिंसा अध्याय का पाँचवा नियम है कि किसी भी व्यक्ति को अपरिग्रह मानकर उसका तिरस्कार न करना। अहिंसा का इतना सुमम पर्यवेक्षण मान्य सामान्य सुद्धि की पहलू के बरे है।

किसी को विरस्तृत करने की भावना को भी हिंसा की शक्ति में परिपक्व करने वाला संघ कियता महान् हो सकता है। इसका अनुमान तो स्वतः लग ही जाता है। यदि अपने देश में इस भावना का पूर्ण प्रचार हो जाए तो युद्ध युद्ध का भेद स्वच्छा से मिट जाएगा और हम कार्य में मानव के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। ऐसे विचार यदि प्रचलित रहते तो कुछ दिन बीते जिस दुर्घटना का सामना सत्य विनोबा को एकबार में करना पड़ा मायब बेसी बात एकदम नहीं होती और आपसी भद्रभाव तथा जातिवाद का एवं उच्च-नीच का भेदभाव ही मिट गया होता।

इसी तरह सत्यवाद के अध्याय का पांचवां नियम है कि किसी व्यक्ति से भ्रूख ब्रत या हस्तावेज न लिखवाना। इस नियम का पालन न होने के कारण ही समाज के कितने सदस्य बनी से मित्तारी हो गए और एक मुकद्दमेबाजी की बजह से कितने मनुष्यों को सच्चाई का दामन छोड़ भ्रूख की शरण लेनी पड़ी। फिर अर्थात् ब्रत के अध्याय का पांचवां नियम है कि किसी चीज में मिसावट कर या मक्दमी को घसनी बताकर न बेचना। यदि व्यापारियों में सभी इस संघ के सदस्य बन जाएं और इन नियम का पालन करने लग जाएं तो यह निश्चित है कि सरकार अर्थ के परिष्कार से बच जाएगी और सभी नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा होगी। व्यापारी भी धार्मिक-आति चिन्ता और प्रामाण्य कष्टों से बच जाएंगे। इस तरह इन नियमों में व्यक्ति और समाज दोनों की रक्षा होती है और राष्ट्र का भी बहुत कल्याण होता है।

ब्रह्मचर्यव्रत का पांचवां नियम है—एक पत्नी के होते दूसरा विवाह न करना। इस नियम का यदि पालन किया जाए तो समाज की धर्मको कुटीरियां दूर हो जाएंगी। न केवल ब्याह का प्रश्न उठेगा न बृद्धावस्था में छाड़ी कर मुकद्दमेबाजी के जीवन बर्बाद करने की समस्या। इसमें एक अपवाद भी दिया गया है कि यदि बत्नी सहर्ष आजा देती हो या पुरुष दूसरी छाड़ी भी कर सकता है। इससे यह स्पष्ट माहसूस पड़ता है कि नियमों को यथासाम्य सुयम और व्यावहारिक बनाने की चेष्टा की गई है। पांचवें परिच्छेद में अतिरिक्त ब्रत का व्याख्यात्मक नियम है कि दूषित एवं ब्रूणित ठीकों से मोकरो, ठेका बाइसेन्स यदि

प्राप्त न करना। यह नियम स्पष्टतः बोधित कर रहा है कि वर्तमान समाज को निम्न मनोकृत्तियों की घोर संस्थापक का ध्यान पूर्णतः भाङ्ग्य है। उन्होंने समाज की समस्याओं का सम्प्रीर अध्ययन किया है। इन प्रकार संघ के सभी नियम स्वर्नाधारों में अंकित किये जाने योग्य हैं और अधिकांश अधिकांश मानवता के पुजारी यदि इसे धारणसात् कर लें तो संसार में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाए। संसार को बची हुई, कुचामी हुई और बराहती हुई मानवता इस संघ में प्राप्ति प्राप्त कर सके। चूंकि इसका एकमात्र लक्ष्य मानवमान को धार्मिकतात्मक जीवन की घोर प्रवृत्त कर सके मुक्त की पहिचान कर देना है।

इस संघ का अधिपत्य उन्मत्त शील पद्धता है क्योंकि यह एक महान् मन्त्र द्वारा निस्वार्थ भाव से संघालित धाम की अस्वस्थ गवनी न घोर दलबन्दी से मुक्त है। इसमें न किसी देश या विदेश का प्रश्न है न किसी जाति का धर्म का एकाधिपत्य है। सार विश्व के पुण्य और पापी सब की दृष्टि में समान हैं और इसके सदस्य बन सकते हैं। चाहे कोई हिन्दु हो या मुसलमान पारसी हो या ब्रिस्तान सभी सब के कारण में ध्या धरनी ब्याप्त और लक्षण मानवता का आयाकल्प कर सकते हैं। संघ के इसी व्यापकत्व से प्रभावित हो यूरोप और एशिया तथा अन्य महादेशों के चितकों में इसकी भूमि भूमि प्रगमा की है और सभी इसकी सफलता की शुभकामना करते हैं।

आचार्य श्री सुमसीयणी ने दिम्सी अधिवेशन में इसे स्पष्ट बताया था कि इस संघ का संघालक मैं हूँ इसका धर्म यह नहीं कि सब मेरे ही सम्प्रदाय के लोग इसके संघप्रमुख होंगे। स्पष्ट विहित होता है कि गलतान्त के अधिधारों पर पूरा ध्यान दिया गया है तथा कोई भी दक्षिणातमी विचार इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। महिमाओं का भी सामानाधिकार दिया गया है तथा वे भी संघ की सदस्या बन कर समाज का बन्धाण कर सकती हैं। अधिन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भी इस आन्दोलन की आशयवता को महसूस किया है तथा इसकी प्रगति की शुभकामना की है। प्रधानमंत्री श्री नेहरू भी आचार्य श्री से मिलकर बहुत प्रभावित हुए थे और अन्तः विनीता ने तो इस आन्दोलन को परमावश्यक बताया तथा मानव बन्धाण का प्रकाश माना है। इन

बड़े बिल्लकों की बातें तो दूर रहीं सामान्य सामाजिक व्यक्ति भी इसकी ओर बहुत धनिक घाकूट हुए हैं और सदस्यों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करते समय बहुत ही बड़े लोगों का ही उसमें विश्वास जमता है। उदाहरणार्थ कांग्रेस के इतिहास या भूदान यज्ञ ने तो सर्वसाक्षर में एक सुतन धम्याय जोड़ दिया है जबकि प्रारम्भ में लोग इसकी सफलता में बहुत कम विश्वास करते थे।

एक सुझाव

समस्या उठती है कि इस पब्लिक धान्दोलन और बुनामदारकारी संघेस को जन-जन के पास पहुंचाया कैसे जाए? ऐसे धान्दोलन के लिए यह समय परिपक्व है, किन्तु उसे व्यापक बनाने के हेतु पूर्ण प्रचार तथा उपर्युक्त वातावरण के हेतु जन-सम्पर्क की अपेक्षा है। इस कार्य में अणुवृत्तियों की संघ विनोबा के मार्ग पर विचारना चाहिए तथा उपायें होने पर उसको अपनाया चाहिए। चूंकि जब तक हम गांवों में नहीं जाते प्रत्येक अक्षरहीनक धावाज नहीं पहुंच जाती तब तक कार्य पूर्ण नहीं हो सकता और लक्ष्य से संघ दूर भी रह जायेगा। भारत की धात्मा दूर बेहात के गांवों में बसती है। उसे जवाना होना और उन व्यक्तियों को मात पर लाना होना जिन्हें धाव के अशुद्ध और विचारत वातावरण ने निर्मल जीवन के मार्ग से विचलित कर जस्टी राह पर लया दिया है। सनाधान पक्षों समाजों ऐदियों धारि की सहायता लेने पर भी वास्तविक जनसम्पर्क संभव नहीं हो पाता। इसका तो यही मार्ग है कि अणुवृत्तियों की टोतियां पैदल घूम-घूम कर बेघ और बिदेस के सहृदयों और गांवों में जाकर इसका प्रचार करें और संघ के कुछ एक ऐसे भी सदस्य बनाए जाएं जो अपना मारा जीवन इसके प्रचार में अपनाते को स्वच्छापूर्वक प्रस्तुत रहें और तभी जहेस्य की उपलब्धि होगी।

मानव समाज धाव ओर धर्नेतिव हो उठा है, वह तो कुछ स्वसों पर अधुषो से भी दुरा है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को धाम्य-वर्धन के सिद्धांत को अपनाया चाहिए तथा यवासाध्य मनता बाधा कर्मणा इस दुर्ध्वयस्था को

प्रसूत धाम्नीन

इएर नैतिकता का प्रसार किया जाए तथा प्रव्यात्म को प्रपय दिया जाए । मात्र यही मार्ग है, जिसे विपमताएं मिट सकती हैं समस्माओं का प्रसूत हा गपना है । और बिरु-साम्नि की स्थापना हो सकती है । मनुष्य का चरित्र ही सब कुछ है । बिना उसके स्तर को ठंका किए समाज और राष्ट्र का निर्माण असम्भव है । प्रसूत धाम्नीन द्वारा राष्ट्र की मानवता को सुबारा जा सक्ता चरित्र का निर्माण किया जा सकता । मत में कर्तुया—

बलित और मरित मानवता
उठे, करे प्रपना उत्कर्ष ।
ध्यापक हो जन-जन के मन में
नवपुन का प्रसूत धाम्नीन ।

ग्रहितक समाज-रचना का स्वप्न

—श्री यमपाल जैन

सम्पादक जीवन साहित्य

धार्मिक-ग्रन्थालय के प्रति मेरी काफी समय से रुचि है और प्राचार्य भी तुमसी के सम्पर्क में भी कई बार आ चुका हूँ। मुझ उनके समुच्चयपत्रों भी तुमसे को मिले हैं।

विद्यमान इतिहास के पृष्ठों को लोभकर देखा जाए तो सात होया कि इन प्रकार के नैतिक ग्रन्थालय समय-समय पर होते रहे हैं। मन्वन्तम भयवान् श्री महावीर न नैतिक ज्ञानि का मूलपाठ किया। इनके परभाव मन्वन्त बुद्ध और महात्मा बाबा न इसको बढ़ाया। प्राचार्य विनोबा न प्राचार्य तुमसी धाम असे ही महापुरुष हैं जिन्होंने संसार की विपत्तियों को मकर उनक हस्त के लिए अपना क्रम बढ़ाया है। समय-समय पर ऐसे महापुरुषों का जन्म होता ही रहता है जो मानव का पथ प्रदर्शन करते हैं।

मनुष्य ने जो मानव-जीवन पाया है वह अपने मुक्त व शान्ति की प्राप्ति न वास्तविक मार्ग बूढ़ दिखाने के लिए है। धर्मों न महापुरुषों ने नए ग्रहण का सही दिग्दर्शन कराया है। उनमें एक ही विचारधारा प्रस्तुत होती है—जीवन में अपने मुक्त व शान्ति पाने का सही मार्ग क्या है? स्वार्थ न प्रलोभन का समझन सही रास्ता नहीं। त्याग संयम में साधना ही जीवनोत्थान का सही रास्ता है।

एक मन्वन्त जीवन न परिवार सम्बन्धी सारी विपत्तियों से मुक्त होकर धार्मिक की नींव लेता है। उसके विपरीत एक लक्ष्यपति सेठ, जो वैभवशाली न पूर्वीपति है। धार्मिक से गहों पर सेटे रहने पर भी विपत्तियों में उससे रहता है और नीर नहीं ले जाता। वह ज्ञानसाधनों के पुनः स्वप्न में भी बाधता रहता है।

अर्थोपाजन की बिन्ता उसके पुन की तरह सपी हुई है। यह धाज की स्थिति है। अजर महावीर धीर बुद्ध जैसे स दुनिया की जन-मानस की सेवा करना चाहते तो क्या नहीं कर सकत थे? क्या उनके पास जैसे की कमी थी? नहीं अजर मानव में मानवता का संचार करने का कार्य जैसे के बस पर नहीं होता। उसके लिए त्याग चाहिए, तप व साधना चाहिए। उन्होंने राजपाट बैमव व परिवार सब कुछ छोड़ा वन में निवास किया कारण यही कि उनका यह आत्मो त्थान का सही माय था। सत्य व अहिंसा के वास्तविक दृष्टिकोण से इन्होंने समाज को एक नई अतना की नई आमुति दी कि वैन से भौतिक-गुल की प्राप्ति होती है आरिणक सुख की नहीं।

स्वराज्य के बाद यहाँ विपमताओं का प्रचार हुआ। अनेकता बईमानी पुणचार, झूठ व कपट आदि असद्व्यवहारों का प्रकोप हुआ। मानवता ने मानव से कासों दूर किया कर लिया। सत्य व अहिंसा पापीकी के साथ ही विनीत हो गए, ऐसा महसूस किया। आचार्य भी तुलसी को इस स्थिति का अनुभव हुआ। उनके हृदय को बड़ी ठेस पहुंची। महान् पुरुषों का जन्म नैतिक अस्थि के लिए ही हुआ करता है। उन्होंने साक्षा बर्तमान युग की विपमताओं के वातावरण में नैतिक अस्थि के लिए कोई सरस मान खोजना चाहिए, जिसको प्रत्येक व्यक्ति सरसता से अपनाकर अपने जीवन के निर्माण में सहयोगी बने। इसी दृष्टिकोण से धाज से समभय व अथ पूर्व यह नितिक अस्थि का आन्दोलन—अलुवत-आन्दोलन आरम्भ किया गया। इसमें छोटे-छोटे वर्तों का उस्तेप किया गया है। मानव यदि महावर्तों का पासन नहीं कर सक्ता तो अलुवर्तों का तो पासन अवश्य करे। एकदम यदि महस की लंबी मंत्रिस पर नहीं पहुंच सके तो दो बार सीढ़ी ही चढ़ने का प्रयास करे। प्रयास की बसोटी पर बसे जाने पर ही प्रपत्ति का माग नम्भव है। इस प्रकार आन्दोलन का मुक्तपाठ हुआ। धीरे-धीरे इसका विकास-क्रम बड़ा धीर इतना बड़ा कि धाज सारे देश की जनता में इस प्रकार की भावनाओं का प्राबल्य हुआ। देश के सभी भागों में इस नैतिक आन्दोलन का स्वागत हुआ-। देश ने नेता, विचारक साहित्यकार पत्रकार आदि विविध व्यक्तियों को ऐसे

विचार पककर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मानवता का निर्माण के लिए यह अनुभव विचार है और अगर प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना लेता तो मुक्त व शान्ति का सही मार्ग सरलता से प्राप्त हो जाए।

इसका प्रथम अभियोग दिल्ली में हुआ। लैकड़ों की छावनी में व्यक्ति जाके हुए और इस नैतिक आन्दोलन में दूर पड़न में अपनी स्वीकृति दी। बार में जोखपुर व राणावास भी मुझे जाने का सौभाग्य मिला। वहाँ बीस-बाईस लो के करीब अनुभवशी बहने के झोकड़े धाए। इस आन्दोलन में पाँचों का कोई महत्व नहीं है। देखना यह है कि कितने व्यक्तियों ने इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अपने जीवन को बदला है। मुझे तो इस आन्दोलन के निरमों से बड़ी प्रेरणा मिली है। वास्तव में यह आन्दोलन जीवन को सही बिधा देकर मानव को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

अनुभव-आन्दोलन यह नहीं कहता कि घर-बार छोड़ो सम्पत्ती बल बाधो या दुनिया में कुछ नहीं है। वह कहता है, यदि व्यापारी हैं तो व्यापार में प्रामाणिकता सम्भारि ब ईमानदारी रखें। पहले इसमें कुछ भिन्नक-सी महसूस होनी मगर बाद में प्रसन्न-तोष मिलेगा। मगर इस तरह व्यक्ति स्वयं मुक्त होकर व्यापार से ही समाज, देश व राष्ट्र-सुख सम्भव है। केवल बोबी हीचें इसके से क्या होने वाला है? इस आन्दोलन के प्रति सभी व्यक्तियों की गति रही है और रहनी भी चाहिए। यह आन्दोलन जिस तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, यदि यही क्रम रहा तो हीम ही देश व राष्ट्र में नैतिक व्यक्ति का प्रमुख पूर्णकषेण स्थापित कर सकेगा।

मेरी तो एक ही बारणा रही है कि जो भी व्यक्ति इस आन्दोलन में भाग ले निष्पक्षता ही और महारुई के साथ चिन्तन मनन व अध्ययन करें। इच्छामों को सीमित रखें व वर्तमान समाज की मायताओं को बदलने में योग दें। हीम ही यह आन्दोलन विरहव्यापी होमा और मानव में जो मानवता की कमी है वह रिबाई नहीं देवी। यहिक समान रचना का स्वप्न भी हीम ही साकार हो सकेगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

